अंक 19 : अगस्त, 2024
चौ-मासिक, बेंगलूरु

Azim Premji University

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी

लर्निंग कर्व

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

टिकाऊ स्कूल संस्कृति के लिए अभ्यास

सम्पादन समिति

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता, सह-सम्पादक
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
shefali.mehta@azimpremjifoundation.org

चन्द्रिका मुरलीधर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
chandrika@azimpremjifoundation.org

निमरत खण्डपुर
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
nimrat.kaur@azimpremjifoundation.org

शोभा लोकनाथन कवूरी
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
shobh.kavoori@azimpremjifoundation.org

प्रकाशन कार्यालय
अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय,
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु, कर्नाटक - 562 125
Email : publications@apu.edu.in
Website: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सलाहकार
हृदय कान्त दीवान, सचिन मुले,
सुधीश वेंकटेश, उमाशंकर पेरिओडी

प्रकाशन टीम
लोकराम वी.जी.
मीरा प्रभु
सम्बित महापात्रा
शाहनाज़ बेगम

अनुवाद अंक सम्पादक
मधुकर एस.पुट्टी (कन्नड़ा)
राजेश उत्साही (हिन्दी)

हिन्दी अनुवाद
एकलव्य फ़ाउंडेशन
समन्वय : प्रतिका गुप्ता

आवरण चित्र
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन आर्कइव से

डिज़ाइन
Banyan Tree
98458 64765

हिन्दी अंक लेआउट
आदर्श प्रा.लि. भोपाल
+91-755-2555442

कृपया ध्यान दें :

- ***इस अंक में प्रकाशित लेख मूलत: अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व (अँग्रेज़ी) अंक 19,अगस्त, 2024 के लेखों का हिन्दी अनुवाद हैं। यह अनुवाद ई-कॉपी के रूप में ऑनलाइन अक्टूबर, 2024 में प्रकाशित हुआ है। मूल अँग्रेज़ी अंक को*** https://azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve ***से डाउनलोड किया जा सकता है।***
- ***यह हिन्दी अंक या इसके अलग-अलग लेख*** https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/ ***पर उपलब्ध हैं।***
- ***लेखों में व्यक्त विचार और दृष्टिकोण लेखकों के अपने हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन या अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।***

'' अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन है। इसका उद्देश्य शिक्षकों, शिक्षक-अध्यापकों, स्कूल प्रमुख, शिक्षा अधिकारियों, अभिभावकों और गैर-सरकारी संगठनों तक ऐसे प्रासंगिक और विषयगत मुद्दों में पहुँच बनाना है जो उनके रोजमर्रा के काम से सम्बन्धित हैं। लर्निंग कर्व शैक्षिक जगत के विभिन्न दृष्टिकोणों, अभिव्यक्तियों, परिप्रेक्ष्यों, नई जानकारियों और नवाचार की कहानियाँ प्रस्तुत करने के लिए एक मंच प्रदान करता है। इसका मूल विचार 'शैक्षणिक' और 'अभ्यासकर्ता' के मध्य सन्तुलन हेतु उन्मुख पत्रिका के रूप में स्थापित होना है।''

सम्पादक की ओर से

चौथी कक्षा की एक छात्रा ने अपने पिता को खो दिया। वह एक महीने बाद स्कूल वापस आई और चुपचाप आख़िरी बेंच पर बैठने चली गई। वह किसी से बात नहीं कर रही थी, न ही किसी से नज़रें मिला रही थी। हर दिन, वह कक्षा में आती और पीछे बैठ जाती, कभी किसी से बात नहीं करती, न ही कक्षा की गतिविधियों या खेलों में भाग लेती। वह फिर कभी हँसी, मुस्कराई या खेली नहीं। उसके सभी सहपाठी, जैसा कि 9 साल के बच्चों के लिए स्वाभाविक है, उसके आस-पास उलझन महसूस कर रहे थे। उन्हें समझ नहीं आ रहा था कि उन्हें क्या करना चाहिए – क्या उन्हें उसके साथ बात करनी चाहिए या उसे अपने साथ खेलने के लिए कहना चाहिए। कुछ बच्चों को उसके लिए दुख हुआ, कुछ उदासीन रहे और यह उन सभी के लिए अनुकूल था कि उसने ख़ुद ही अपने आप को अलग-थलग कर लिया था; उन्हें ऐसा कुछ भी करने की ज़रूरत नहीं थी जो 'कठिन' लगे।

दशकों बाद, मैं, जो उसके सहपाठियों में से एक थी, उस घटना को अपने दिमाग़ से निकाल नहीं पाती हूँ। बहुत देर हो चुकी है, लेकिन मैं ख़ुद से पूछती हूँ कि क्या यह स्कूल के सभी लोगों – प्रिंसिपल, शिक्षकों और हम सभी की सामूहिक ज़िम्मेदारी नहीं थी कि हम उसके पास जाते और छोटे-छोटे तरीक़ों से जितना हो सकता उसे सांत्वना देते। क्या बच्चों के रूप में हमें शिक्षकों से और शिक्षकों को स्कूल प्रमुख से मार्गदर्शन की आवश्यकता नहीं थी? दुर्भाग्यवश, स्कूल की संस्कृति इस तरह की करुणा के पक्ष में नहीं थी। अगर यह उनके लिए महत्त्वपूर्ण होता, तो प्रिंसिपल को पता होता कि बच्ची कब वापस आएगी, और सभी शिक्षकों को उसका विशेष ध्यान रखने के लिए सतर्क किया जाता। क्या यह सराहनीय न होता अगर एक शिक्षक ने उसकी कक्षा के बच्चों के साथ पहले ही बात कर ली होती कि उनकी दोस्त कैसा महसूस कर रही होगी और जब वह वापस आएगी तो वे क्या कर सकते हैं? क्या यह उचित नहीं था कि शिक्षक शोक संतप्त बच्ची के वापस आने पर शब्दों या हाव-भाव के माध्यम से कुछ सहानुभूति प्रकट करता/करती? उससे पूछना कि वह कहाँ और किसके साथ बैठना चाहती है और जब बच्चे खेलने के लिए बाहर निकलते तब किसी को बुलाकर उसे अपने साथ ले जाने का कहना, और बच्चों से उसका हाथ पकड़ने को कहना – कुछ ऐसा जिससे बच्ची को यह महसूस करने में मदद मिलती कि वह ऐसे लोगों के साथ एक सुरक्षित, सुकून देने वाली जगह पर है, जो उसका दुख जानते हैं और दुख में उसके साथ हैं? इससे पूरी कक्षा को कई तरह से मदद मिलती। उन्होंने करुणा और शोकग्रस्त लोगों के पास जाने, उसके बात करने और उन्हें सांत्वना देने के तरीक़े आत्मसात किए होते।

जब हमने इस अंक की विषयवस्तु को तय किया, तो हमें ठीक-ठीक पता था कि हम किन बातों पर ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं। हम ऐसी प्रथाओं पर विचार कर रहे थे, जो लम्बे समय तक चलने वाली स्कूल संस्कृति निर्मित करती हैं – ऐसी प्रथाएँ जो स्कूल के लोकाचार में इतनी गहराई से समा जाती हैं कि वे सभी के लिए बहुत सहज हो जाती हैं और अगर इन्हें विकसित करने में मदद करने वाले लोग स्कूल छोड़कर चले जाते हैं, तो भी इनमें कोई बदलाव नहीं आता है।

हमने यह अंक बहुत जुनून के साथ संजोया है, और हम उम्मीद करते हैं कि देश भर के शिक्षक अपने स्कूलों में

एक ऐसी संस्कृति निर्मित करेंगे जिससे विद्यार्थियों को यह महसूस करने में मदद मिल सके कि वे सुरक्षित हैं, उन्हें हर चीज़ में शामिल किया जाता है और उनकी सहायता की जाती है, जिससे उनके समग्र शैक्षणिक और व्यक्तिगत विकास को बढ़ावा मिले। एक 'सकारात्मक' स्कूल संस्कृति के निर्माण के कई पहलू हैं और हमने कुछ का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, कुछ का संक्षेप में उल्लेख किया है और कई को छोड़ना पड़ा है। हमें इस बारे में आपके विचारों की प्रतीक्षा रहेगी कि माता-पिता, शिक्षकों या शिक्षक-प्रशिक्षकों के रूप में आपके अनुभव क्या हैं?

आख़िरी बात, लर्निंग कर्व पत्रिका की यात्रा, जो 2003 में फ़ाउंडेशन की पहली पत्रिका के रूप में शुरू हुई थी, जल्द ही कुछ बदलावों से गुज़रेगी और हालाँकि यह कुल मिलाकर 48 वाँ अंक लर्निंग कर्व के मौजूदा स्वरूप का आख़िरी अंक है, पर हम दूर नहीं जा रहे हैं; बस ख़ुद को एक नए अवतार में प्रस्तुत करेंगे। सम्पादकीय टीम सभी पाठकों और योगदानकर्ताओं के प्रति इन सभी वर्षों के दौरान उनके सहयोग के लिए अत्यन्त आभारपूर्वक धन्यवाद व्यक्त करती है।

शेफ़ाली त्रिपाठी मेहता
सह-सम्पादक
shefali.mehta@azimpremjifoundation.org

अनुवाद : सुबोध जोशी **पुनरीक्षण :** प्रतिका गुप्ता
कॉपी एडिटर : अनुज उपाध्याय

इस अंक में

किनसे मिलकर बनती है स्कूल की संस्कृति? 03
हृदय कान्त दीवान

स्कूल संस्कृति की प्रकृति और उद्देश्य 07
प्रकाश अय्यर

स्कूल और कक्षा की संस्कृति के केन्द्र में विविधता 11
मधुसूदन रमेश

स्कूल में जेंडर-आधारित सीमाओं पर सवाल उठाना 14
निधि गुलाटी

आवाज़ें

कक्षा में जिज्ञासा को पोषित करना : कुछ अनुभव, कुछ सीख 18
अनघ पुरन्दरे

समावेशन की संस्कृति को बढ़ावा देना : एक कक्षा का वृत्तान्त 21
अनन्या बनर्जी

भय-रहित स्कूली माहौल का निर्माण : एक कक्षा का विवरण 23
अनिल एस. अंगडिकि

स्कूल, अभिभावकों और समुदाय के बीच मज़बूत सम्बन्धों की संस्कृति निर्मित करना 27
अर्धेन्दु शेखर दाश

पढ़ने की संस्कृति का निर्माण : एक ग्रामीण स्कूल की सफलता की कहानी 31
मेलोडी खलखो

एक स्कूल जहाँ सभी विद्यार्थी सुरक्षित, मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण महसूस करते हैं 34
प्रियंका डी.

स्वामित्व और ज़िम्मेदारी का बोध : स्कूल संस्कृति का एक बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू 38
शोभन सिंह नेगी

सहयोगी और समर्थकारी माहौल बनाना : गाँव के एकल शिक्षक वाले स्कूल से मिली सीखें 41
स्वाति भण्डारी

बच्चे सामाजिक और व्यवहार-सम्बन्धी आदतों को कैसे आत्मसात करते हैं 44
उमाशंकर पेरिओडी

इस अंक में

गणित के डर से छुटकारा पाना 47
रजनी द्विवेदी

स्कूल संस्कृति : विभिन्न परिस्थितियों और समय अवधियों में भिन्नताएँ 51
राहुल मुखोपाध्याय

चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव : स्कूली संस्कृति पर स्थायी प्रभाव 55
रुद्रेश एस.

किनसे मिलकर बनती है स्कूल की संस्कृति ?

हृदय कान्त दीवान

बच्चों को शिक्षित करने के ज़रूरी हिस्से के तौर पर उनमें अवधारणाओं से जुड़े ज्ञान और संज्ञानात्मक क़ाबिलियत को बढ़ाना स्कूल की भूमिकाओं में शामिल है। इसके साथ ही, समाज के लिए अहमियत रखने वाले रवैयों, रुझानों और उसूलों को बच्चों में विकसित करना भी स्कूल के सरोकारों का हिस्सा है। आदर्श रूप में कहें तो, सामाजिक जीवन में जानकारियों के साथ अपनी पसन्द तय करने और सकारात्मक योगदान देने के लिए, ऊपर दिए गए सभी पहलुओं के साथ शिक्षा की ज़रूरत है। न सिर्फ़ व्यक्ति की अपनी तरक़्क़ी और क़ामयाबी के लिए बल्कि सबके हित में इन योगदानों की ज़रूरत है। स्कूल, बच्चों को जानने की ख़्वाहिश रखने वाले, ख़ुद में यक़ीन करने वाले, और सीखने के उत्साह से भरे विद्यार्थी तो बनाएँ ही, साथ ही यह तय करने की पुरज़ोर कोशिश करें कि उनका विकास ऐसा हो जिससे कि वे समाज में बन्धुत्व की भावना को बढ़ाने में मददगार बनें। ज़्यादातर स्कूलों में समावेशन और संज्ञानात्मक क्षेत्रों में श्रेष्ठता के उनके घोषित मक़सद के साथ इस पर काम किया भी जाता है। हालाँकि, इन पहलुओं में जो सफलता हासिल होती है, वह स्कूल-दर-स्कूल अलग-अलग होती है।

> मैंने राज्य सरकारों के स्कूलों के साथ काम किया है और उनके कामकाज में बहुत फ़र्क़ देखा है। यह फ़र्क़ अब भी मौजूद हैं। मेरे लिए सबसे ताज्जुब की बात यह थी कि एक ही इलाक़े में (एक-दूसरे से सटे गाँवों में) स्कूलों और शिक्षकों के काम करने का ढंग अलग-अलग था। इसके साथ ही, किसी शिक्षक का पहले काम ठीक न भी रहा हो, लेकिन अच्छी तरह से काम करने वाले किसी स्कूल में आने पर वे सार्थक ढंग से पढ़ाना और बच्चों, समुदाय और बाक़ी शिक्षकों के साथ जुड़ना शुरू कर देते थे। वहीं, जिन शिक्षकों की बहुत तारीफ़ सुनी हो, वे ठीक तरह से काम नहीं करने वाले किसी स्कूल में तबादला होने पर उस स्कूल के बाक़ी शिक्षकों की तरह काम करने लग जाते थे। स्कूलों के बारे में कुछ तो ऐसा था, जिसकी वजह से शिक्षकों के काम करने का ढंग बदल जाता था।

हम स्कूलों में घूमने पर, स्कूल के माहौल में उनके संचालन के कुछ पहलुओं को महसूस कर सकते हैं। कुछ स्कूलों में हम लोगों को मुस्कराते हुए देखते हैं, जो ऊर्जा से भरे उद्देश्यपूर्ण ढंग से अपने काम में लगे होते हैं, कहीं-कहीं छोटे समूहों में लोग चर्चाओं में शामिल होते हैं, या शोर-ग़ुल के बिना अपने-अपने काम में या मिलकर कुछ और करने में तल्लीन होते हैं; ऐसे माहौल में हँसी और चर्चाओं की आवाज़ें होती हैं मगर हो-हल्ला नहीं होता है, बहस-मुबाहिसा होता है पर एक-दूसरे पर चीख़ना-चिल्लाना नहीं होता है। मुझे ऐसे स्कूल याद हैं, जहाँ खेल के मैदान पर क्लास-टीचर और विद्यार्थी दोनों मौजूद थे। इनमें भी वे स्कूल ख़ासतौर पर याद हैं जहाँ शिक्षक महज़ वहाँ खड़े हुए, या बच्चों की निगरानी करते हुए, या उन्हें खेल खेलने के तरीके (कोचिंग) के निर्देश देते हुए मौजूद नहीं थे, बल्कि शिक्षक भी अपने विद्यार्थियों के साथ उन्हीं की तरह बतौर खिलाड़ी खेल रहे थे – वे भी सामने वाली टीम के खिलाड़ियों के पीछे दौड़ रहे थे और खिलाड़ी छात्र-छात्राएँ भी उनके पीछे दौड़ रहे थे। ऐसे माहौल में, हम शिक्षकों और बच्चों के बीच के रिश्तों को, और ख़ुद शिक्षकों में और बच्चों में मौजूद रिश्तों को महसूस कर सकते हैं, जो ऐसी परस्परता को मुमकिन बनाते हैं। ऐसे स्कूलों में शिक्षक अपने काम के बारे में जज़्बे के साथ और पेशेवराना ढंग से बात करते हैं। और अपने काम को गम्भीरता से लेने के बावजूद शिक्षक और विद्यार्थी दोनों ही तनाव में न होकर ख़ुश और आत्मविश्वासी लगते हैं। हमें महसूस होता है कि सभी को मालूम है कि वे यहाँ क्यों हैं, क्या करने के लिए हैं। विद्यार्थी और स्टाफ़ एक महत्त्वपूर्ण उद्यम में बराबर के साझीदारों की तरह एक-दूसरे का सम्मान करते हैं। संक्षेप में कहें तो, किसी भी स्कूल को ऐसे सुरक्षित और सबकी परवाह करने वाले माहौल की ज़रूरत है, जहाँ विद्यार्थियों को महसूस हो कि उनकी मौजूदगी ख़ुशी का सबब है और जहाँ उनकी क़द्र है; यह ऐसा सामाजिकता का माहौल है जिसमें विद्यार्थियों और उनके शिक्षकों दोनों में स्कूल अपना होने और स्कूल के साझीदार होने का एहसास होता है।

मैंने देखा है कि कक्षा को और काग़ज़ी कामकाज को सम्हालने में उलझे शिक्षक बड़ी कक्षाओं के बच्चों को छोटी कक्षाओं को 'मॉनिटर' करने में लगा देते हैं। ये बच्चे बेंत लेकर निगरानी करते हैं और छोटे बच्चों को 'अनुशासित' करने के लिए बेंत का इस्तेमाल करने में भी हिचकिचाते नहीं हैं। ऐसे स्कूलों की कक्षाओं में ख़ामोशी तो पाई जाती है, लेकिन वे बच्चों में इस धारणा के बीज बो देते हैं कि दूसरों को क़ाबू में करके और बन्दिशें लगाकर ही अनुशासन क़ायम किया जा सकता है।

जब कोई स्कूल बातचीत, आपसी व्यवहार और गतिविधियों के सम्बन्ध में बच्चों पर इस तरह से बन्दिशें लगाता है, तो वह उन्हें यह समझाने का मौक़ा गँवा देता है कि एक ओर अर्थपूर्ण और उपयोगी जुड़ाव बनाने और शान्ति क़ायम रखने में, व दूसरी ओर अव्यवस्था और शोर-शराबा करने में क्या फ़र्क़ है।

हालाँकि, इसका जवाब देना आसान नहीं है कि कोई स्कूल जैसा है वैसा ही क्यों है, और वह क्या है जो उस स्कूल की संस्कृति के भाव को वैसा बनाता है, फिर भी हम इस संस्कृति को बनाने वाले कुछ तत्त्वों की पहचान कर सकते हैं – यानी स्कूल की सकारात्मक संस्कृति को कैसे विकसित किया जा सकता है, इसकी कुछ मुख्य विशेषताएँ क्या हैं, और ऐसी संस्कृति को क़ायम रखने की चुनौतियाँ क्या हैं।

संस्कृति के मुख्य तत्त्व

किसी भी सकारात्मक संस्कृति के मुख्य तत्त्वों में से एक है कि **बच्चों को इस तरह से सकारात्मक प्रोत्साहन देना जो उन्हें सीखने में मददगार साबित हो**। सीखने के नज़रिए से बात करें तो, स्कूल को यह यक़ीन होना चाहिए कि सभी बच्चे सीखने की क़ाबिलियत रखते हैं, और वे तब सबसे अच्छी तरह से सीख पाते हैं जब उन्हें प्रोत्साहित किया जाए और उनमें सीखने के प्रति जोश भरा जाए, न कि डाँटा-फटकारा जाए या सज़ा दी जाए।

स्कूल की संस्कृति का एक और तत्त्व इस बात में नज़र आता है कि **स्कूल सीखने को क्या मानते हैं**। मसलन, 'राष्ट्रीय शिक्षा नीति (एनईपी), 2020' के पूर्वगामी और काफ़ी विस्तृत 'प्रारूप राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2019' में कहा गया है, "सभी अवस्थाओं में शिक्षाक्रम और शिक्षण-शास्त्र में जो भी सुधार प्रस्तावित किए जा रहे हैं उनका एक ही मूल उद्देश्य है कि पूरी शिक्षा-व्यवस्था को इस तरह पुनर्गठित किया जाए कि यह रटने की ओर ले जाने के बजाय बच्चों को कैसे सीखा जाए या सिखाने में सक्षम बने। उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों में 21वीं सदी के लिए ज़रूरी हुनर, कौशल, ज्ञान और मूल्य विकसित किए जाएँ और साथ-ही-साथ वे एक समग्र और पूर्ण व्यक्ति के रूप में विकसित हों। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिए शिक्षाक्रम और शिक्षण-शास्त्र को पूर्ण रूप से बदला और पुनर्गठित किया जाएगा" (बिन्दु 4.2; अँग्रेज़ी प्रारूप में पृष्ठ 76)। इसलिए, स्कूल में बच्चों को सीखने और समझने में मददगार संस्कृति होनी चाहिए, न कि उन्हें सीखने के शॉर्टकट उपलब्ध करा दिए जाएँ। बौद्धिक माहौल ऐसा होना चाहिए कि बच्चों से यह उम्मीद की जाए कि वे कोशिश करके सीखेंगे और सभी बच्चों को अपनी बेहतरीन कोशिश करने में मदद की जाए और उनके सामने ऐसा करने की चुनौती भी पेश की जाए। वे इस तरह सीखें कि वह उनके लिए ज़िन्दगी भर सीखने की प्रक्रिया का हिस्सा बन जाए, न कि यह बस वक़्ती तौर पर दिखावे भर के लिए हो। ऐसा मुमकिन हो, इसके लिए स्कूलों में नया जानने की ललक, खोज-बीन और सीखने की संस्कृति होना ज़रूरी है, और यह आवश्यक है कि शिक्षक इसका हिस्सा हों।

इस तरह, स्कूल की संस्कृति का तीसरा मुख्य तत्त्व यह बनता है कि **शिक्षक भी सीखने के लिए बहुत रुझान दिखाएँ**। अगर कक्षा में बताई बातें और शिक्षकों की बताई किताबें बच्चों में दिलचस्पी जगाती हैं तो वे पुस्तकालय में उमड़ पड़ेंगे। किसी स्कूल में बच्चों से उम्मीदें तब ही की जा सकती हैं जब वैसा ही आचरण स्कूल के सभी सदस्यों में दिखाई देता हो। इसलिए, विद्यार्थियों से ऊँची उम्मीदों के साथ स्नेह भरे परवरिश के माहौल के लिए स्कूल को वैसा ही माहौल शिक्षकों को भी देना चाहिए।

एक और ज़रूरी तत्त्व स्कूल की संरचनाएँ हैं, जो उसके कार्मिकों और छात्र-छात्राओं को स्कूल में उनकी **आवाज़ और साझा ज़िम्मेदारी** देती हैं। स्कूल में सभी को यह महसूस होना चाहिए कि यह स्कूल उनका अपना है। इसकी ज़िम्मेदारी स्कूल के नेतृत्व की है। इस जज़्बे को ऐसे मंचों के ज़रिए हक़ीक़त में ढाला जाना चाहिए, जो कामकाज में सबकी स्पष्ट भूमिकाएँ और एक-दूसरे की ज़िम्मेदारियों की समझ को सुनिश्चित करें। ऐसा इस तरह से किया जाए, जिसमें हर एक को यह एहसास हो कि वे स्कूल के माहौल पर असर डालने वाले फ़ैसले लेने और समस्याओं का समाधान करने में हिस्सेदार हैं। फ़ैसले लेने और लागू करने में शिक्षकों को जो अहमियत और स्वायत्तता दी जाती है, उसका बहुत असर इस बात पर होता है कि स्कूल के विद्यार्थी और स्कूल से जुड़े बाक़ी लोग स्कूल को किस तरह से देखते हैं।

इसके साथ ही मेल-मिलाप की संस्कृति बनाने में एक और बुनियादी तत्त्व सभी शिक्षकों सहित स्कूल के नेतृत्व का **रोल मॉडल** की तरह काम करना है। स्कूल के प्राचार्य को शिक्षकों से दोस्ताना होना चाहिए और उनके बीच फ़ासला कम होना चाहिए, लेकिन साथ ही व्यक्तिगत और पेशेवर रिश्तों में ज़रूरी दूरी भी बनाए रखनी चाहिए। यह वही सन्तुलन है जो शिक्षकों को विद्यार्थियों के साथ बनाए रखना ज़रूरी है – शिक्षक, विद्यार्थियों के दोस्त रहें लेकिन यह न भूलें कि वे अपने विद्यार्थियों के रोल मॉडल भी हैं। पढ़ाने वाले और पढ़ने वाले के बीच होने वाले संवाद के अलावा खेलों, कलाओं और क्राफ़्ट में भागीदारी के ज़रिए शिक्षकों और विद्यार्थियों में आदान-प्रदान को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विद्यार्थियों के साथ समानता की भावना होने, और साथ ही उनकी परवाह करते हुए अपनी छत्र-छाया देने से छात्र-छात्राओं में आत्मविश्वास और निष्पक्ष व्यवहार की भावना पैदा होती है, जैसा कि खेल के मैदान में भी होता है। इसी तरह, नृत्य और

गायन में अगर शिक्षक ख़ुद भागीदार नहीं बनते हैं तो बच्चे में यह धारणा घर कर जाती है कि इन कलाओं में वही हिस्सा ले सकते हैं जो इनमें पारंगत हों। इस प्रकार की झिझक को दूर करने के लिए ऐसी संस्कृति की ज़रूरत है, जहाँ सभी से यह उम्मीद की जाती हो कि वे किसी संकोच के बिना हिस्सा लेंगे और उनके लिए ऐसे अवसर भी मौजूद हों।

एक-दूसरे की इज़्ज़त करने और लिहाज़ रखने की भावना से बच्चों में यह भरोसा जगता है कि वे शिक्षकों से ऐसे मुद्दों पर भी बात कर सकते हैं जो जटिल हों और जिन पर बात करना आसान न हो। एक-दूसरे को सम्बोधित करने के ढंग का बहुत असर इस बात पर पड़ता है कि आपसी संवाद कैसा होगा और लोग एक-दूसरे को किस नज़र से देखेंगे। इसलिए, लोगों के रिश्तों और व्यवहारों के लिए ऐसे मानदण्ड बनाए जाने चाहिए जो दूसरों के एहसास और नज़रियों को समझने, परवाह करने, उत्कृष्टता हासिल करने और नैतिक व्यवहार की 'पेशेवर' संस्कृति बनाने में मददगार हों। यह बहुत बड़ी चुनौती है क्योंकि शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों में रिश्तों से उम्मीदों और अपने समुदाय के बारे में धारणाओं की साँस्कृतिक और सामाजिक समझ पहले से बनी-बनाई होती है। इस लिहाज़ से, विविध पृष्ठभूमियों से आने वाले लोगों की इस मिलन स्थली, यानी स्कूल, में सबसे ज़रूरी कारक आलोचना और सुझावों को निष्पक्ष रूप से लेने और समझने की लोगों की क्षमता है। इस तरह की प्रक्रिया के लिए सब्र और समझदारी की ज़रूरत होती है, ऐसा ख़ासतौर पर उन लोगों से अपेक्षित है जो अधिकार-सम्पन्न पदों पर हैं और नेतृत्व करने वाले हैं।

नीतिगत वक्तव्यों पर एक नज़र

समुदाय और सरकारें मानती हैं कि शिक्षा का सबसे ज़रूरी काम बच्चों के मन में ऐसी नैतिकताएँ क़ायम करना है जो समाज के जारी रहने और तरक़्क़ी करने को बढ़ावा देती हैं। विद्यार्थी का मूल्यांकन और रैंक चाहे जैसा भी हो, यह उम्मीद तो बनी रहती है कि तालीम उस व्यक्ति को 'सुसंस्कृत' बनाएगी। ये अपेक्षाएँ पाठ्यचर्या से जुड़े दस्तावेज़ों में साफ़तौर पर बताई गई हैं, और शिक्षकों के लिए दिशा-निर्देशों एवं नियमावलियों में इनकी झलक मिलती है।

नीतिगत दस्तावेज़ों में स्कूल के माहौल और विद्यार्थी उसे किस तरह से लेते हैं इस पर फ़िक्र ज़ाहिर की जाती रही है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति, 2020 सबको शामिल करने वाले माहौल और परवाह करने वाली संस्कृति की ज़रूरत पर ज़ोर देती है, जो उत्कृष्टता हासिल करने, नया जानने की ललक पैदा करने, दूसरों के एहसास और नज़रियों को समझने और समता को बढ़ावा देती हो। यह बच्चों में संवैधानिक और सकारात्मक भारतीय मूल्यों का विकास करने पर भी ज़ोर देती है, जिसे शिक्षकों को भी अपने काम में महसूस करना लाज़मी है।

एनईपी 2020 में (और एनसीएफ़ 2005 में भी) ऐसी संस्कृति बनाने के लिए सक्रिय कोशिश करने का ज़िक्र है, जिसका लम्बे समय तक विकासात्मक असर हो। साथ ही यह दलील भी पेश की गई है कि '18 वर्ष का युवा किसी सुहानी सुबह उठकर अचानक यह नहीं जान सकता कि उसे प्रजातंत्र में भाग लेना है, उसका संरक्षण करना है, उसे बढ़ावा देना है, विशेषकर तब, जब उसको पहले से इसका कोई अनुभव न हो, न ही उसके सामने इसके लिए कोई आदर्श हों।' एनसीएफ़ 2005, एनईपी 2020 और एनसीएफ़-एसई 2023 के मुताबिक़, स्कूलों को अपने यहाँ ऐसी संस्कृति सुनिश्चित करनी चाहिए जो विद्यार्थियों को लोकतंत्र, बन्धुता, बहुलता और समता के मूल्यों का अनुभव दे। इसके लिए माता-पिता और समुदाय के साथ भी बात और काम करने की ज़रूरत होगी, जिससे बच्चों के लिए ये मूल्य उनके घर के अनुभवों का हिस्सा बन पाएँ।

इसके अलावा, नीतिगत दस्तावेज़ों ने नया जानने और समझने, उचित वजह और साक्ष्य की तलाश करने के साथ ही खुली सोच रखने, नए तरीक़े ईजाद करने और अमल में लाने की संस्कृति बनाने की सिफ़ारिश की है। ये दस्तावेज़ बच्चों में गणित का डर घर कर जाने से बचाने; बहुभाषीय बातचीत होने देने; और बच्चे अपने समुदाय से जो भाषा, संस्कृति और ज्ञान लेकर आते हैं उसका एहतराम करने और इनके ज़रिए उनके साथ बात और काम करने की सिफ़ारिश भी करते हैं।

इन दस्तावेज़ों में सलाह दी गई है कि स्कूल में परवाह करने वाला और स्नेह भरी परवरिश का माहौल होना चाहिए। एनईपी 2000 में शिक्षकों पर अध्याय में कहा गया है कि 'यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कूल में सीखने के लिए सकारात्मक वातावरण हो, प्रधानाचार्यों और शिक्षकों की अपेक्षित भूमिका में यह स्पष्ट रूप से शामिल होगा कि वे अपने स्कूलों में प्रभावी अधिगम और सभी हितधारकों के लाभार्थ एक संवेदनशील और समावेशी संस्कृति का निर्माण करें' (एनईपी 2020 फ़ाइनल 5.13। अँग्रेज़ी पृष्ठ 21)। प्रारूप (एनईपी 2019) के अनुसार 'जिन स्कूलों में शिक्षक काम करते हैं, वहाँ पर संवेदनशीलता, सहयोग की भावना, और समावेशी संस्कृति होनी चाहिए। यह उत्कृष्टता, जिज्ञासा, समानुभूति और समता को प्रोत्साहित करती है। स्कूल संस्कृति का विकास प्रधानाचार्यों, स्कूल कॉम्प्लैक्स के प्रधान, एसएमसी और स्कूल कॉम्प्लैक्स मैनेजमैण्ट कमेटी (एससीएमसी) को मिलकर करना चाहिए' (एनईपी ड्राफ़्ट 2019, अध्याय-5 शिक्षक, अँग्रेज़ी पृष्ठ 114)। ड्राफ़्ट एनईपी आगे यह भी कहती है कि 'यह सुनिश्चित करने के लिए कि स्कूल में सीखने के लिए सकारात्मक माहौल हो, और बच्चे अधिक प्रभावी ढंग से सीखें, प्रधानाचार्यों और शिक्षकों की अपेक्षित भूमिका में

यह स्पष्ट रूप से शामिल होगा कि वे स्कूल में एक संवेदनशील और समावेशी संस्कृति का निर्माण करें' (एनईपी ड्राफ़्ट 2019, अध्याय-5 शिक्षक, अँग्रेज़ी पृष्ठ 118)।

शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 (आरटीई) में भी स्कूल का सकारात्मक माहौल विकसित करने की बात की गई, और यह कहा गया कि 'किसी भी बच्चे को शारीरिक दण्ड नहीं दिया जाएगा या उसका मानसिक उत्पीड़न नहीं किया जाएगा।' इसके लिए स्कूल का नेतृत्व करने वालों को स्कूल को बच्चों के लिए माक़ूल और तनावमुक्त जगह बनाने पर ध्यान केन्द्रित करना होगा, जहाँ कक्षा का माहौल सीखने वालों के मुताबिक़ हो। ऐसा स्कूल बनाने के लिए अनुशासन, दण्ड और विद्यार्थियों व शिक्षकों के बीच रिश्तों से जुड़ी धारणाओं को फिर से परिभाषित करने की ज़रूरत है।

स्कूलों में बुनियादी बदलाव की किसी भी प्रक्रिया को सकारात्मक तथा सबको साथ लेकर चलने की संस्कृति और परम्परा का विकास करने की प्रक्रिया के ज़रिए आगे बढ़ाना चाहिए। यह सफ़र आसान नहीं है और, जैसा कि कहा गया है, इसमें शामिल लोगों की धारणाओं तथा समुदायों की और शिक्षकों की अब तक की परम्पराओं से इसे प्रतिरोध का सामना भी करना पड़ रहा है।

हृदय कान्त दीवान शिक्षा के क्षेत्र में अलग-अलग ज़िम्मेदारियों के साथ 40 साल से ज़्यादा वक़्त से काम कर रहे हैं। वे वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के साथ कार्यरत हैं। वे एकलव्य के संस्थापक सदस्य हैं, और विद्या भवन सोसायटी, उदयपुर के शैक्षिक सलाहकार रहे हैं। वे शिक्षा में नवाचार और राज्यों के शैक्षिक ढाँचों एवं शिक्षा सम्बन्धी सामग्री में बदलाव की कोशिशों से जुड़े रहे हैं। उनसे hardy@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : हिमालय तहसीन **पुनरीक्षण :** प्रतिका गुप्ता

स्कूल संस्कृति की प्रकृति और उद्देश्य

प्रकाश अय्यर

समाज में प्रवेश के रूप में स्कूली शिक्षा

स्कूल को मुख्यतः पाठ्यचर्या से जोड़ना और सिर्फ़ पाठ्यचर्या को ही शिक्षा का साधन मानना हमारे लिए आम बात है। लेकिन स्कूल का अर्थ इससे कहीं ज़्यादा व्यापक है। शुरुआती कुछ सालों में बच्चे परिवार, रिश्तेदारों और पड़ोसियों के इर्द-गिर्द एक सीमित भौगोलिक दायरे में बड़े होते हैं, तथा उनकी परम्पराओं और रीतियों के अभ्यस्त होते जाते हैं। फिर वे इस दायरे से निकलकर स्कूल में आते हैं जो शुरुआत में, सम्पर्क में आने वाले व्यक्ति तथा वहाँ पालन की जाने वाली संस्कृति और रीतियाँ, दोनों ही उनके लिए अनजान होते हैं। स्कूल वह पहला सामाजिक स्थान होता है, बच्चे जिसके प्राथमिक निवासी होते हैं और यह सामाजिक संस्थानों में बच्चों के प्रवेश की शुरुआत होती है, जहाँ वे स्वायत्त व्यक्तियों के रूप में निवास करते हैं।

बच्चे वहाँ रिश्ते बनाते हैं, मानकों को समझते हैं, और नई रीतियों व परम्पराओं से परिचित होते हैं, जैसे कक्षा के नियमों का पालन करना, कक्षा में ध्यान देना, कक्षावर्क और गतिविधियाँ करना, ज़िम्मेदारियाँ लेना, दोस्त बनाना, चीज़ें बाँटना और धीरे-धीरे सेकेण्डरी स्कूल तक आते-आते उन्हें इस बात की समझ आने लगती है कि एक स्वायत्त व्यक्ति होने का क्या मतलब होता है। इस प्रक्रिया में, वे अनोख़ी सामाजिक और व्यक्तिगत पहचानों से अवगत होते हैं और इन्हें बनाते भी हैं। एक तरह से, स्कूल उनके लिए वयस्क जीवन और स्व-निर्णय की प्रक्रिया में दाख़िल होने का द्वार होता है।

> स्कूली शिक्षा के अनुभव के तीन पहलुओं पर ध्यान देने की आवश्यकता है। सबसे पहले, स्कूल बच्चों के लिए ज़िम्मेदारियों के साथ स्वतंत्र जीवन की शुरुआत है – उन्हें न केवल पाठ्यक्रम सीखना है बल्कि यह भी प्रदर्शित करना है कि उन्होंने सीखा है। दूसरे, वे दूसरों के साथ कैसे व्यवहार करना है और उन्हें क्या पसन्द है और क्या नहीं, इस बारे में महत्त्वपूर्ण जीवन विकल्प चुनकर अपनी व्यक्तिगत पहचान और व्यक्तित्व बनाते हैं। तीसरा, इस अनुभव से, वे इस बारे में एक दृष्टिकोण विकसित करते हैं कि समाज कैसे काम करता है, और एक वयस्क होना क्या है।

बच्चे निष्क्रिय शिक्षार्थी नहीं हैं जो बिना कुछ सवाल उठाए उन्हें जो भी पढ़ाया जाता है उसे स्वीकार कर लेते हैं। मनुष्य *स्वाभाविक रूप से* स्वायत्त होते हैं और एक उम्र के बाद वे औपचारिक शैक्षणिक क्रियाओं को समझने लगते हैं और *जान जाते हैं* कि उन्हें सिखाया जा रहा है और उनसे अपेक्षित है कि वे *सीखें*। यह स्वायत्तता ख़ुद को उस रूप में पेश करती है, जिस तरह वे स्कूल की सांस्कृतिक रीतियों से पेश आते हैं, जैसे कुछ नियमों को मानकर और कुछ की अनदेखी करके, उन मानकों को ध्वस्त करके जिन्हें लेकर वे पूरी तरह आश्वस्त नहीं हों, और कभी-कभी विरोध प्रदर्शनों तथा बग़ावत के माध्यम से। उदाहरण के लिए, कुछ साल की स्कूली शिक्षा के बाद, विद्यार्थी कुछ शिक्षकों व कुछ विषयों के प्रति पूर्वाग्रही हो जाते हैं और कुछ कक्षाओं में अन्य कक्षाओं की तुलना में अधिक ध्यान देते हैं। स्कूल के मानकों को ध्वस्त करना अकसर सूक्ष्म तरीक़ों में सामने आता है, जैसे होमवर्क न करना, कक्षा में जानबूझकर देर से पहुँचना, या कुछ कक्षाओं में ध्यान देने के बजाय बस गोदा-गादी करना या कॉमिक्स पढ़ते रहना। विरोध और विद्रोह भी मौन तरीक़ों से होते हैं, जैसे कुछ विषयों को पढ़ने से मना ही कर देना और उन्हें सीखने की बिल्कुल भी परवाह न करना।

औपचारिक पाठ्यचर्या तथा स्कूल की संस्कृति

स्कूल में सीखना और सिखाना सिर्फ़ औपचारिक पाठ्यचर्या के माध्यम से ही नहीं होता। स्कूल ऐसी प्रक्रियाएँ, प्रोटोकॉल और मानक तैयार करते हैं, जो पाठ्यचर्या का आदान-प्रदान सम्भव बनाते हैं। ये सभी अतिरिक्त प्रक्रियाएँ और मानक स्कूल की पहचान के निर्माण में योगदान करते हैं। उदाहरण के लिए, यूनिफ़ार्म या ड्रेस कोड, कक्षा में बैठने की व्यवस्था, शिक्षक-विद्यार्थी सम्बन्ध, शिक्षकों को दी गई स्वायत्तता का स्तर, विद्यार्थियों के व्यवहारों से जुड़े नियम, प्रातःकालीन सभा का प्रारूप, शिक्षकों की बैठकों तथा अभिभावक-शिक्षक बैठकों की बारम्बारता व प्रकृति, वग़ैरह। ये सभी बातें उन रीतियों की व्यवस्था का हिस्सा हैं, जिन्हें बच्चे अनुभव करते हैं और जिनसे वे सीखते हैं।

कोई भी रीति हमेशा ही कुछ बुनियादी मूल्यों से निकलती है। उदाहरण के लिए, जब कोई स्कूल सुबह की सभा में कोई

धर्मनिरपेक्ष प्रार्थना शामिल करने का निर्णय लेता है, तो वह दर्शाता है कि वह धर्मनिरपेक्षता और समावेश को महत्त्व देता है। अगर कुछ स्कूल सुबह की सभा में प्रार्थनाओं की जगह राष्ट्र के प्रति संकल्प को शामिल करते हैं, तो वे यह दर्शा रहे होते हैं कि वे देशभक्ति को किसी भी धार्मिक सम्बद्धता पर तरजीह देते हैं। रीतियों का महत्त्व उनके द्वारा प्रदर्शित मूल्यों में होता है, और स्कूल जो चुनाव करते हैं वे उन मूल्यों को आधार बनाकर किए जाते हैं जिन मूल्यों को वे बच्चों के मन में बैठाना चाहते हैं।

दूसरी बात, हम व्यवहारों को रीतियाँ तभी कह सकते हैं जब उनका लगातार पालन किया जाता हो, और इन रीतियों के अर्थ और उद्देश्य की एक साझा समझ हो। उदाहरण के लिए, ऊपर उल्लिखित किसी सुबह की सभा के मानक तब तक मानक नहीं बनेंगे जब तक कि स्कूल के सभी सदस्यों की इन मानकों के बारे में और उनके होने के कारणों के बारे में एक साझा समझ नहीं होगी। स्कूल के नए शिक्षकों और सदस्यों को आमतौर पर पहले से स्थापित इन्हीं मानकों का अभ्यस्त बना दिया जाता है ताकि स्कूल की संस्कृति में निरन्तरता और स्थिरता को सुनिश्चित किया जा सके।

स्कूल की संस्कृति तथा शिक्षा के लक्ष्य

किसी स्कूल की संस्कृति और उसकी पाठ्यचर्या एक ही संस्थान में साथ-साथ चलते हैं, और इसलिए, वे एक दूसरे से स्वतंत्र कभी नहीं होते। स्कूल की संस्कृति शिक्षा के कुछ ऐसे अतिरिक्त लक्ष्यों का प्रतिनिधित्व करती है जो किसी स्कूल के लिए विशेष होते हैं, उदाहरण के लिए, कल के नेतृत्वकर्ताओं, ईमानदार लोकतांत्रिक नागरिकों, या पर्यावरण और संवहनीयता (sustainability) का मूल्य समझने वाले व्यक्तियों का विकास करना। स्कूल अकसर ऐसे मानक और रीतियाँ विकसित करते हैं, जो इन घोषित लक्ष्यों की तरफ़ बढ़ने में मदद करते हैं। इन्हें आमतौर पर दो तरीक़ों से हासिल किया जाता है–

- पाठ्यचर्या या विषयों के तत्वों पर विशिष्ट ज़ोर देना, जो कि आमतौर पर टाइम टेबलों से बहुत स्पष्ट हो जाता है।
- स्कूलों द्वारा उनके संचालन के तरीक़े, या दूसरे शब्दों में कहें तो स्कूल की संस्कृति के हिस्से के तौर पर अतिरिक्त प्रक्रियाएँ और गतिविधियाँ लागू करना।

हम स्कूल की संस्कृति को दो संकेन्द्रित वृत्तों के रूप में देख सकते हैं। मूल पाठ्यचर्या भीतरी वृत्त में होती है, और एक बाहरी बड़े वृत्त में होती है स्कूल की संस्कृति। स्कूल की संस्कृति पाठ्यचर्या के इर्द-गिर्द एक अधि-परत (Meta layer) बना लेती है, जो पाठ्यचर्या के आदान-प्रदान को सम्भव बनाती है। यह बाहरी वृत्त सिर्फ पाठ्यचर्या का आदान-प्रदान करने के लिए बनी प्रक्रियाएँ और प्रोटोकॉल ही नहीं होता, बल्कि ये प्रक्रियाएँ व प्रोटोकॉल शिक्षा के लक्ष्यों और उद्देश्यों का उतना ही प्रतिनिधित्व करते हैं जितना कि औपचारिक पाठ्यचर्या करती है।

हमें यह बात समझने की ज़रूरत है कि किसी संस्कृति के अभिप्रेत लक्ष्य होते हैं, और एक संस्कृति होती है जिसे अनुभव किया जाता है। इन दोनों के बीच में अकसर स्पष्ट अन्तर होते हैं। बच्चों को एक निश्चित ढंग से व्यवहार करना सीखते हुए देखा जाता है, जो कि आमतौर पर उनके स्कूल में रहने के समय तक सीमित होता है। वे अपने व्यवहारों को स्कूल की अपेक्षाओं के अनुरूप गढ़ लेते हैं। लेकिन वे इन व्यवहारों का और इन व्यवहारों में अन्तर्निहित मूल्यों का अर्थ अपने हिसाब से लगाते हैं। अनौपचारिक स्थानों, जैसे घर, परिवार में या फिर शिक्षकों या शैक्षणिक स्टाफ़ की ग़ैर-मौजूदगी में विद्यार्थी लक्षित सीखों की चर्चा करते हैं, उनकी विवेचना करते हैं और उन्हें नकारते हुए अपने तर्क देते हैं। लेकिन फिर भी, स्कूली शिक्षा से जुड़ी सांस्कृतिक रीतियों पर बहस करना, और शिक्षा से जुड़ी सीखों को नकारने की बातें करना सीखने के बुनियादी विचारों के साथ एक जुड़ाव की तरह ही है।

स्कूलों को मौजूदा संस्कृति से सीखने की इस अपरिहार्यता को स्वीकारना होगा और परिस्थिति के मुताबिक़ कार्य करना होगा। इस बात से शिक्षा के दो ऐसे बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू हमारे सामने आ जाते हैं, जिनके साथ स्कूलों में विकसित संस्कृतियों के माध्यम से ही जुड़ा जा सकता है, ये पहलू हैं – नैतिक एवं राजनीतिक शिक्षा।

नैतिक शिक्षा

नैतिक शिक्षा को कुछ बुनियादी सिद्धान्तों को समझने और फिर इन सिद्धान्तों को वास्तविक जीवन की स्थितियों में लागू करने की क्षमता विकसित करने के रूप में देखा जाना आम बात है। यह दृष्टिकोण नैतिक शिक्षा और नैतिक विज्ञान के विषयों की बुनियाद रहा है। बच्चों को इस तरह की सूक्तियाँ सिखाई जाती हैं कि 'Cleanliness is next to Godliness' यानी 'स्वच्छता, ईश्वरीयता के बाद दूसरे स्थान पर आती है', या *हितोपदेश* अथवा *जातक कथाओं* की कहानियाँ सुनाई जाती हैं, जो हमेशा इस पंक्ति के साथ खत्म होती हैं 'तो इस कहानी से हमें यह सीख मिलती है कि...।'

इस रवैये की दो गम्भीर सीमाएँ हैं। पहली, कि नैतिक शिक्षा को कुछ सिद्धान्तों को याद करने या समझने तक सीमित कर

दिया जाता है, लेकिन उन्हें वास्तविक जीवन की परिस्थितियों में कैसे लागू किया जा सकता है, इस बात को शिक्षार्थियों की कल्पना पर छोड़ दिया जाता है। हम सभी एक से जीवन अनुभवों से नहीं गुज़रते, इसलिए सिद्धान्तों को लागू करने के लिए ज़रूरी रचनात्मकता तथा संज्ञानात्मक क्षमताएँ सिखाना नामुमकिन नहीं तो मुश्किल ज़रूर होता है। दूसरी बात, कहानियाँ मददगार होती हैं, लेकिन चूँकि कहानियाँ बिल्कुल जुदा स्थानों व कालों में घटी हुई होती हैं इसलिए उनमें से सिद्धान्तों को निकालने और उन्हें समकालीन समय व स्थितियों में लागू करने के लिए बहुत सारी रचनात्मकता और कल्पना की ज़रूरत होती है। इसके अलावा, हम उन अनुभवों से नहीं गुज़रते जो सदियों पहले लोगों को हुए अनुभवों से मिलते-जुलते हों जैसे कि *जातक कथाओं* में हैं और न ही उन राजकुमारों के जीवन अनुभव दूर-दूर तक हमारे अनुभवों जैसे थे जिनके लिए हितोपदेश लिखा गया था। यही बात तब भी लागू होती है जब हम गाँधी या अब्दुल कलाम जैसे आदर्श व्यक्तियों की कहानियाँ सुनाते हैं। हमारे जीवन अनुभव कभी भी उनके अनुभवों से नहीं जुड़ सकते और न ही हमारी क्षमताएँ उनकी क्षमताओं के साथ जोड़ी जा सकती हैं।

इस दृष्टिकोण में, नैतिकता को उपयुक्त शब्दाडम्बर और केवल विनम्रता, सत्य, ईमानदारी आदि के मोटे-मोटे सरलीकृत मूल्यों का इस्तेमाल करने तक सीमित कर दिया जाता है। हक़ीक़त में, नैतिकता सामाजिक रीतियों में अन्तर्निहित होती है। हमारी नैतिकताएँ इस बात से तय होती हैं कि हम उन वास्तविक परिस्थितियों में किस प्रकार व्यवहार करते हैं, जब हमारी भावनाएँ और हमारे बोध एक-दूसरे के साथ द्वन्द में होते हैं। नैतिक परिस्थितियाँ भी आमतौर पर दो-या-दो से अधिक महत्त्वपूर्ण मूल्यों के बीच संघर्ष पैदा करती हैं। हमारे लिए उस समय यह तय करना काफ़ी मुश्किल हो जाता है कि क्या करना ठीक होगा जब हम इस आम समस्या का सामना करते हैं – क्या ऐसी स्थिति में झूठ बोलना ठीक होगा जब हमें लगता है कि सच बोलने से किसी का नुक़सान होगा? या ऐसे किसी व्यक्ति से ऐसी चीज़ चुराना कितना उचित है जिसके पास वह चीज़ पहले से ही बहुत अधिक है? ये उस तरह की समस्याएँ हैं जो विद्यार्थियों के सामने आनी ही हैं और शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो ऐसी समस्याओं से निपटने में विद्यार्थियों की मदद करे।

ऐसी स्थिति में ही स्कूलों की प्रचलित संस्कृति मदद करती है। जैसा कि हमने शुरू में देखा था, संस्कृतियाँ ऐसी रीतियाँ होती हैं जिनमें मूल्य अन्तर्निहित होते हैं। विद्यार्थियों से रीतियों का पालन करने की अपेक्षा करना और उन्हें उन स्थापित रीतियों के पीछे मौजूद तर्क पर सवाल उठाने के लिए प्रेरित करना नैतिक शिक्षा का एक बहुत सीधा और मूल्यवान तरीक़ा होगा। जब विद्यार्थी किसी स्कूल के स्थापित मानकों पर सवाल उठाते हों और उन मानकों को तोड़कर उसके प्रभाव को देखने की कोशिश करते हों, उस वक्त उन्हें पर्याप्त स्वतंत्रता और स्वायत्तता देना उनकी नैतिक स्वायत्तता को विकसित करने के लिए बहुमूल्य साबित होगा।

राजनीतिक शिक्षा

यही दलील विद्यार्थियों को लोकतंत्र से परिचित कराने और उनकी राजनीतिक शिक्षा के लिए भी दी जा सकती है। ऐसा देखा गया है कि नागरिकशास्त्र के विषय के माध्यम से विद्यार्थियों को हमारे संविधान के बारे में शिक्षित करना बिल्कुल ही अपर्याप्त रहा है। यह विद्यार्थियों को लोकतंत्र के बुनियादी सिद्धान्तों, जैसे स्वतंत्रता और समानता, के बारे में समुचित समझ तक प्रदान नहीं करता, न ही उन्हें संवैधानिक मूल्यों की कोई जानकारी देता है।

स्कूलों के लिए इस तरफ़ आगे बढ़ने का सबसे अच्छा तरीक़ा होगा संसद की एक ऐसी प्रतिकृति को क्रियान्वित करना, जहाँ विद्यार्थी व शिक्षक सदस्य हों, ताकि विद्यार्थियों को लोकतंत्र की एक ठोस व्यावहारिक समझ विकसित करने में मदद मिल सके। स्कूलों को ऐसी संस्कृति विकसित करनी चाहिए जहाँ विद्यार्थी प्राथमिक स्कूल से कुछ महत्त्वपूर्ण गतिविधियों की जिम्मेदारी लें, जैसे कक्षा में शिक्षण-अधिगम सामग्री (teaching-learning material या टीएलएम) और पुस्तकालय में किताबों का प्रबन्धन। ऐसी गतिविधियों में नियमों और मानकों के साथ चलना और इस वजह से दूसरों के साथ औपचारिक रिश्ते बनाना अपरिहार्य रूप से शामिल होता है। इन ज़िम्मेदारियों की जटिलता प्राथमिक से माध्यमिक स्कूल में धीरे-धीरे बढ़ सकती है, जब वे विद्यार्थी-संसद जैसे औपचारिक लोकतांत्रिक ढाँचों से जुड़ सकते हैं।

तार्किक चुनाव (चाहे नैतिक हो या राजनीतिक) का अर्थ असम्बद्ध, तटस्थ, सैद्धान्तिक निर्णय के परिणामों को लागू करना नहीं होता, बल्कि सामान्य रूप से सफल मौजूदा रीतियों को हमारी विशेष परिस्थितियों के मुताबिक़ अनुकरण करना या उन्हें उपयुक्त रूप से संशोधित करना होता है।

विद्यार्थियों की स्वायत्तता और स्कूल की संस्कृति

आख़िरी बात, इस सबको सम्भव बनाने के लिए स्कूल की संस्कृतियों को तार्किक चुनाव करने की विद्यार्थियों की स्वायत्तता को एक अनुभवसिद्ध तथ्य के रूप स्वीकार करना होगा। किसी स्कूल की संस्कृति के लिए यह सुनिश्चित करना

ज़रूरी है कि विद्यार्थियों को निष्क्रिय ढंग से सोचने के तरीक़ों को स्वीकार करने के लिए प्रेरित न किया जाए – न तो पाठ्यचर्या की तरफ़ से और न ही स्कूल के वयस्क लोगों की तरफ़ से। इसके बजाय, सवाल करने की और यहाँ तक कि कभी-कभार, पाठ्यचर्या में या फिर स्कूल की संस्कृति के माध्यम से लागू किए गए मूल्यों व मानकों को चुनौती दे पाने की आज़ादी होना किसी भी स्कूल की संस्कृति का एक बुनियादी पहलू होना चाहिए। सवाल उठाने की इस क्रिया में औचित्य और तर्क का आधार होना ज़रूरी है ताकि यह शिक्षाप्रद हो, और सिर्फ़ आलोचना करने के लिए की गई आलोचना न हो, या कि विद्रोही होने भर के लिए किया गया विद्रोह न हो।

प्रकाश अय्यर अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ़ एजुकेशन में सह-प्राध्यापक हैं। वे शिक्षा का दर्शनशास्त्र एवं पाठ्यचर्या सिद्धान्त पढ़ाते हैं, और उनकी शोध की रुचि के क्षेत्र नैतिक तथा राजनीतिक शिक्षा हैं। उनसे prakash.iyer@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी **पुनरीक्षण :** उमा सुधीर **कॉपी एडिटर :** शहनाज़

स्कूल और कक्षा की संस्कृति के केन्द्र में विविधता

मधुसूदन रमेश

मैं यह आशा करता हूँ कि यह लेख विविधता के बारे में समझ विकसित करने, विविधता की स्थिति में काम करने की प्रक्रियाएँ बताने और विविधता के प्रति शिक्षा एवं शिक्षकों के व्यापक दृष्टिकोण हेतु सुझाव प्रस्तुत करने में सफल होगा।

विविधता को पहचानना

सभी के लिए शिक्षा (EFA) आन्दोलन और *सर्व शिक्षा अभियान* (SSA, 2001) के माध्यम से राष्ट्रीय स्तर पर इस वैश्विक प्रतिबद्धता पर दिए गए महत्त्व, और इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रूप से बच्चों को शिक्षित करने के लिए (सभी बाधाओं के बावजूद) शिक्षकों और अभिभावकों की दृढ़ता की बदौलत भारत में स्कूल अधिक विविधतापूर्ण होते जा रहे हैं। आज भाषायी दृष्टि से, सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से, क्षमताओं, विकलांगताओं और लिंग आदि के आधार पर कक्षाओं में अधिक विविधता है। विविधता को पहचानने का एक सरल ढाँचा यह है कि इसके बारे में 'प्रत्यक्ष' और 'अप्रत्यक्ष' प्रभावों के सन्दर्भ में यह सावधानी रखते हुए सोचा जाए कि दोनों की कुछ बातें एक-दूसरे में व्याप्त होंगी। प्रवास प्रत्यक्ष प्रभाव का एक रूप है, हालाँकि प्रवास की प्रकृति भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण है – एक परिवार बेहतर रोज़गार की सम्भावनाओं के कारण किसी महानगरीय शहर में जा सकता है, जबकि दूसरा अपने राज्य में व्याप्त अशान्ति की वजह से पड़ोसी राज्य में जा सकता है।

कक्षा की विविधता पर अप्रत्यक्ष प्रभाव के उदाहरण स्थूल कारक हैं, जैसे कि परिवारों की आकांक्षाएँ, जिनके कारण स्कूल के विकल्पों में बदलाव होते हैं या प्रगतिशील सोच, जैसे कि परिवार/माता-पिता द्वारा अपने विकलांग बच्चे को पड़ोस के 'नियमित' स्कूल में पढ़ाने का दावा करना (जिसका राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 द्वारा समर्थन किया गया है)। अप्रत्यक्ष प्रभावों को पहचानना अधिक कठिन है, जो तेज़ी से बदलते बाज़ारों और नौकरियों की प्रकृति पर उनके प्रभाव, सोशल मीडिया से प्रभावित जन संस्कृति, विद्यार्थियों की नई रुचियों की एक शृंखला और इक्कीसवीं शताब्दी में पैदा हुए युवाओं की विकसित होती पहचानों से उत्पन्न होते हैं।

कक्षा में विविधता जिस गति से और जिस तरीक़े से आकार ले रही है, उस पर गम्भीरता से विचार करने की आवश्यकता है। शिक्षकों के रूप में हमें ज़्यादा विविधता का स्वागत करना चाहिए और इसके लिए तैयार रहना चाहिए। इससे यह व्यावहारिक प्रश्न उठता है कि हम इस नई विविधता के लिए किसी स्कूल और कक्षा की संस्कृति को कैसे निर्मित कर सकते हैं।

विविधता की स्थिति में काम करने की प्रक्रिया

शिक्षकों के रूप में, विविधता के साथ जुड़ने में न केवल उन विभिन्न परिस्थितियों के प्रति संवेदनशीलता विकसित करना शामिल है जिनसे बच्चे आते हैं, बल्कि शैक्षणिक दृष्टि से भी इसके साथ जुड़ना शामिल है। दूसरे शब्दों में कहें तो इसका अर्थ है महत्त्वपूर्ण प्रश्न पूछना, जैसे कि मैं अपने सभी विद्यार्थियों के जीवन के व्यक्तिगत अनुभवों को अपने शिक्षण और अधिगम में किस तरह शामिल कर सकता हूँ; और बच्चे एक-दूसरे से क्या सीख सकते हैं, न केवल वैचारिक रूप से, बल्कि जिस दुनिया में वे रहते हैं उसके बारे में सामाजिक समझ विकसित करने के लिए भी। विविधतापूर्ण कक्षा का अर्थ है बच्चों को एक-दूसरे के बारे में जानने और समाज का सामाजिक ताना-बाना समझने के अधिक अवसर। इस प्रकार की विविधता के साथ जुड़ने का अर्थ अलग-अलग प्रकार की सभी पृष्ठभूमियों के प्रति स्वीकृति दर्शाना भी है।

हाल ही में समावेशी प्रक्रियाओं पर आयोजित वेबिनार[i] में, दिल्ली के एक सरकारी स्कूल के मेंटर शिक्षक मुरारी झा ने शिक्षा की संरचना और शिक्षा प्रदान करने के तरीक़ों तथा बच्चों की विविध पृष्ठभूमियों के अन्तर के बारे में बात की। उन्होंने सांस्कृतिक अन्तरों में से जिस अन्तर का उल्लेख किया वह था ऐसे समुदाय में विद्यार्थियों को स्कूल आने के लिए प्रेरित करने के लिए उनकी शत-प्रतिशत उपस्थिति का जश्न मनाना, जहाँ ऐसे बच्चे हैं जो अपने परिवार का भरण-पोषण करने के लिए काम करते हैं और अकसर स्कूल नहीं जाते। आगे उन्होंने अपनी कक्षा द्वारा किए जाने वाले चिन्तनशील डायरी-लेखन अभ्यास की प्रक्रिया के बारे में बात की, जिससे उन्हें अपने शिक्षण की रूपरेखा तैयार करने में मदद मिलती है और बच्चों को यह महसूस होता है कि उनके शिक्षक और

उनके साथियों द्वारा उन्हें सुना और समझा जा रहा है। इस तरह की प्रक्रिया को एक को-एजेंसी (सह-गतिविधि) की प्रक्रिया के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है, जो यह दलील देती है कि सीखना शिक्षक और विद्यार्थी के बीच एक साझा प्रयास होता है ।

जब किसी कक्षा की संस्कृति को-एजेंसी के विचार पर आधारित होती है, तो यह विद्यार्थियों को अपने स्वयं के सीखने के लिए ज़िम्मेदारी की भावना रखने का अवसर प्रदान करती है, जिससे बच्चों द्वारा इस बात को समझे जाने की अधिक सम्भावना होती है कि वे कैसे सीखते हैं। उदाहरण के लिए, अगर हम एक ऐसे विद्यार्थी के बारे में सोचें जिसे पढ़ने में कठिनाई होती है और पाठ में यह आवश्यकता है कि विद्यार्थी एक छोटी कहानी पढ़ें और सवालों के जवाब दें। ऐसी स्थिति में को-एजेंसी वाली कक्षा में सभी विद्यार्थियों के लिए *खुलापन* और *विकल्प* शामिल होंगे। सम्भावित विकल्पों में कहानी का विकल्प, पढ़ने और किसी प्रश्न का उत्तर देने में किसी विद्यार्थी को लगने वाले समय का विकल्प, पढ़ने की प्रक्रिया का विकल्प – इसे अकेले या जोड़ी में पढ़ने या टेक्स्ट-टू-स्पीच तकनीक का उपयोग करके इसे सुनने का विकल्प, प्रश्नों या प्रश्नों की संख्या का विकल्प, ऑडियो नोट के माध्यम से उत्तर देने का विकल्प आदि शामिल हो सकते हैं। यह विकल्प सभी विद्यार्थियों को मिलना ज़रूरी है क्योंकि केवल उन्हें विकल्प उपलब्ध कराना, जो अलग हैं, विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से यह महसूस कराएगा कि उन्हें अलग समझा या किया गया है। ऐसी कक्षा में पढ़ने में कठिनाई का सामना करने वाले विद्यार्थी कम चिन्तित होते हैं और अपने पढ़ने और सीखने के कौशल को अपने लिए उपयुक्त गति से विकसित करने के लिए स्वतंत्र होते हैं। इस प्रकार का विकल्प और खुलापन अन्य सभी विद्यार्थियों की मदद करता है क्योंकि उन्हें यह समझने का अवसर मिलता है कि वे कैसे सीखते हैं और वे सीखने के अपने ख़ुद के अनूठे तरीक़े भी विकसित करते हैं। को-एजेंसी का अर्थ विद्यार्थियों को स्वतंत्र विकल्प देना नहीं है, इसमें शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष उनकी प्रक्रिया पर विचार करने और यह जानने से जुड़े सवाल शामिल होते हैं कि वे इस प्रक्रिया में किस प्रकार सुधार कर सकते हैं और इसी से सीखना एक साझा ज़िम्मेदारी बन जाती है।

सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं के अलावा, विविधता को समझने में विद्यार्थियों को जानने के दिन-प्रतिदिन के 'छोटे-छोटे' प्रयास (और चिन्तन) भी शामिल होते हैं। मध्यम आय वर्ग की हाई स्कूल शिक्षिका काव्या वर्ल्ड म्यूज़िक (विश्व संगीत) सुनने की शौकीन हैं। वे अपने विद्यार्थियों द्वारा सुना जाने वाला संगीत सुनने का प्रयास करती हैं और पूरे वर्ष अलग-अलग अन्तरालों पर इस बारे में संक्षिप्त चर्चा करती हैं। यह अपनी रुचियों के आधार पर बच्चों के साथ जुड़ने का उनका तरीक़ा है। इससे विद्यार्थियों के साथ उनका एक तरह का अनूठा जुड़ाव बन जाता है, जैसा सम्भवतः स्टाफ़ रूम के किसी और शिक्षक का नहीं है।

विविधता में समावेशन को अपनाने का बुनियादी सिद्धान्त

कक्षा में विविधता और भिन्नता के विचार का अन्वेषण करते समय, किसी स्थान विशेष की प्रमुख विशेषता के सम्बन्ध में उस भिन्नता की संवेदनशीलता को समझना महत्त्वपूर्ण है। अगर हम एक सामान्य उदाहरण लें, जैसे कि लेफ्ट-हैंडेड (बाएँ हाथ से काम करने वाला) होना (10% लोग बाएँ हाथ से काम करने वाले होते हैं), तो हम पा सकते हैं कि लेफ्ट-हैंडेड विद्यार्थी प्रभावी ढंग से लिख पाने के लिए एक अलग तरीक़े से बैठता है; उचित प्रशिक्षण के अभाव में वह लिखावट में संघर्ष कर सकता है (और यह तथ्य कि भारत में सिखाई जाने वाली अधिकांश लेखन प्रणालियाँ बाएँ से दाएँ प्रारूप का पालन करती हैं); और स्थानों और वस्तुओं (डेस्क, कैंची, मापने के उपकरण आदि) को दाएँ हाथ के लोगों के लिए जिस तरह से डिज़ाइन किया जाता, उसके कारण उसे अनाड़ी माना जा सकता है। दुर्लभ स्थितियों में, बच्चे को बाएँ हाथ से काम करने के लिए नकारात्मक रूप से लेबल किया जा सकता है। कोई व्यक्ति, एक शिक्षक के तौर पर, आवश्यक क़दम उठाकर इस समस्या के हल के लिए प्रयास कर सकता है, जैसे कि बाएँ हाथ से काम करने वालों की मदद के लिए बैठने की लचीली व्यवस्था उपलब्ध कराना, लिखावट के लिए प्रशिक्षण (और/या लिखावट के मानकों में रियायत) तथा बाएँ हाथ से काम करने को सामान्य मानने के प्रति जागरूकता निर्मित करना।

इनमें से ज़्यादातर तरीक़े आज बाएँ हाथ से काम करने के लिए आम हो सकते हैं, लेकिन जब हम इन्हें अन्य प्रकार की भिन्नताओं, जैसे अक्षमताओं, सीखने सम्बन्धी कठिनाइयों या जेंडर सम्बन्धी पहचानों तक विस्तृत करते हैं, तो हम ख़ुद को कहाँ खड़ा पाते हैं? बुनियादी स्तर पर, ऐसी भिन्नताओं के साथ पेश आना बाएँ हाथ से काम करने वाले लोगों के मामले में हमारे द्वारा अपनाए जाने वाले तरीक़े से अलग नहीं होता है। विकलांगता और अन्य अन्तरसम्बन्धी मुद्दों पर काम करने के दौरान और भी अनेक कारकों पर विचार करना पड़ता है, लेकिन शुरुआती बिन्दु एक ही होना चाहिए।

एक शिक्षक-प्रशिक्षक के रूप में अपने अनुभव से मैंने पाया है कि शिक्षक हमेशा इसे शुरुआती बिन्दु के रूप में नहीं देखते हैं। ऐसा इसलिए है क्योंकि अक्षमताओं वाले या कठिनाइयों का सामना करने वाले बच्चों को पढ़ाने का काम सिर्फ़ विशेष

शिक्षक का ही काम माना जाता है और अभी तक इसे नियमित स्कूल शिक्षकों के काम के रूप में अपनाया जाना बाक़ी है। यह विचार एक गहरी जड़ जमा चुका है कि अक्षमता वाले बच्चे केवल निर्देशों या तकनीकों के किसी विशेष सेट द्वारा ही सीख सकते हैं। फिर से दोहराना चाहता हूँ, समावेशी शिक्षा की प्रक्रिया के लिए शुरुआती बिन्दु विशेष रणनीतियों या तथाकथित सर्वोत्तम प्रक्रियाओं का कोई समूह नहीं है, यह आपकी मौजूदा प्रक्रियाओं को और अधिक समावेशी बनाना और उन प्रक्रियाओं को त्यागना है जो बहिष्करण करने वाली हैं।

निम्नलिखित (परस्पर सम्बन्धित) बिन्दुओं के साथ मैं इस लेख का समापन कर रहा हूँ :

- जैसा कि समावेशी शिक्षा के कई विद्वानों ने चिह्नांकित किया है, समावेशी शिक्षक की मानसिकता यह होती है कि वह भिन्नता या भिन्न होने की स्थिति को व्यक्ति का मूलभूत हिस्सा मानता है। जब हम इस पर विचार करेंगे, तो हम पाएँगे कि क्षमता-आधारित श्रेणियाँ, जिनके तहत हम बच्चों को अच्छे, औसत या मन्द जैसे वर्गों में रखते हैं, लुप्त हो जाएँगी और हम उन्हें भिन्नताओं वाले व्यक्तियों के रूप में देख पाएँगे।
- समावेशी प्रक्रिया में 'सर्वोत्तम प्रक्रियाओं' से ज़्यादा हम जो जानते हैं (हमारी सामर्थ्यों और रुचियों) उसमें बढ़ोतरी करने पर ध्यान देना शामिल है। जैसा कि काव्या संगीत के माध्यम से और मुरारी विद्यार्थियों के जीवन के अनुभवों के बारे में अपनी जिज्ञासा के माध्यम से करते हैं। समावेशी प्रक्रिया एक प्रकार के शिक्षाशास्त्र का विकास है जो सभी विद्यार्थियों की भागीदारी को सम्भव बनाता है और 'विकास की मानसिकता' (यह विश्वास कि प्रयास के माध्यम से कोई भी सीख सकता है और सीखने की प्रक्रिया में सुधार कर सकता है और सीखना एक जन्मजात क्षमता नहीं है) जैसे विचारों से युक्त होता है।
- समावेशन को व्यवहार में लाने के लिए, शिक्षकों को ऐसी व्यवस्था (और स्वायत्तता) की आवश्यकता है, जिससे वे शिक्षा को ऐसे वातावरण में व्यवस्थित और कार्यान्वित कर सकें, जहाँ स्वतंत्रता हो और सभी बच्चों के सीखने, उस जगह से सम्बद्ध होने, विकास करने और आत्म-सन्तुष्टिपूर्ण जीवन जीने के अधिकारों को सुनिश्चित करने के लिए प्रतिबद्धता हो।

टिप्पणी :

1. *समावेशी कक्षाएँ विकसित करने के लिए शिक्षकों का समर्थन करना* – इस वेबिनार को देखने के लिए, नीचे दी गई लिंक का उपयोग करें या क्यूआर कोड स्कैन करें। https://www.youtube.com/watch?v=hucxfxN_cA4&t=3063s

References

Dweck, C., 2017. *Mindset- updated edition: Changing the way you think to fulfil your potential*. Hachette UK.

Florian, L., 2014. *What counts as evidence of inclusive education?* European Journal of Special Needs Education, 29(3), pp.286–294.

Florian, L., 2014. *The Sage Handbook of Special Education*: Two-volume set, second edition, SAGE Publications Inc.

Florian, L., 2015. *Conceptualising inclusive pedagogy: The inclusive pedagogical approach in action*. In Inclusive Pedagogy Across the Curriculum (Vol. 7, pp. 11-24). Emerald Group Publishing Limited.

Hart, S., Drummond, M.J. & McIntyre, D., 2004. *Learning Without Limits*, Maidenhead: Open University Press.

Kar, B. and Sinha, S., 2021. *Disadvantages and Segregation through School Choice*. Economic & Political Weekly, 56(12), p.33.

मधुसूदन रमेश अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, बेंगलूरु के स्कूल ऑफ़ एजुकेशन के संकाय सदस्य हैं। वे पोस्टग्रेजुएट डिप्लोमा इन एजुकेशन और मास्टर्स इन एजुकेशन प्रोग्रामों में समावेशी शिक्षा विषय पढ़ाते हैं। इससे पहले, वे स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में एक डिज़ाइन रिसर्चर थे। डिस्लेक्सिक होने के अपने अनुभव से लाभ उठाते हुए, उन्होंने ग़ैर-सरकारी संगठनों के साथ विकलांगता और समावेशी शिक्षा पर शोध परियोजनाओं पर काम किया और 2019 में, स्कॉटलैंड की एडिनबर्ग यूनिवर्सिटी में समावेशी शिक्षा में मास्टर्स डिग्री करने के लिए शेवनिंग स्कॉलरशिप प्राप्त की। उसके बाद से वे समावेशी प्रक्रियाओं को विकसित करने, शिक्षकों के पेशेवर विकास और विकलांग बच्चों के अधिकारों की वकालत करने के लिए प्रतिबद्ध रहे हैं। उनसे madhusudhan.ramesh@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : सुबोध जोशी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** शहनाज़

स्कूल में जेंडर-आधारित सीमाओं पर सवाल उठाना

निधि गुलाटी

स्कूल में बच्चे विभिन्न गतिविधियों जैसे प्रार्थना सभा, शारीरिक शिक्षा की कक्षाओं और भोजन के दौरान जेंडर के आधार पर लाइन बनाकर खड़े होते हैं। किसी भी कक्षा में एक ही नज़र में हमें बहुत स्पष्ट जेंडर-आधारित बँटवारा दिखाई दे जाता है। लड़के दरवाज़े के पास वाली क़तार में या पीछे की डेस्कों पर बैठते हैं और लड़कियाँ क्लास की भीतरी जगहों पर, दरवाज़ों से दूर लेकिन शिक्षकों के पास बैठती हैं। ये 'जेंडर क्षेत्र' हैं – जेंडर के आधार पर प्रतिबन्धित या आवंटित भौतिक या सामाजिक स्थान। ये 'सीमाबद्ध' स्थान, जिनकी पहचान ऐसे स्पष्ट विभाजन हैं जहाँ कुछ निश्चित क्षेत्रों या गतिविधियों पर किसी एक जेंडर का स्पष्ट प्रभुत्व होता है, बहुत टिकाऊ प्रतीत होते हैं। इन क्षेत्रों के आर-पार जाने वाली अन्तःक्रियाएँ बहुत ही सीमित होती हैं। ये क्षेत्र तब भी बने रहते हैं जबकि इनकी कोई व्यावहारिक ज़रूरत नहीं होती, जैसे कि लाइब्रेरी में दाख़िल होते वक्त जहाँ सभी बच्चे एक-एक, दो-दो की क़तार में शामिल हो सकते हैं। यह लेख ऐसे ही कुछ सवालों और सम्भावनाओं की गहराई में जाता है।

जेंडर-आधारित विभाजनों, रिवाज़ों और परिपाटियों में किस तरह हस्तक्षेप किया जा सकता है? एक बार हम इन परिपाटियों या व्यवहारों की पहचान कर लें तो हम इनमें बदलाव लाने की योजना बना सकते हैं। जेंडर-समावेशी स्थानों और व्यवहारों को किस प्रकार बढ़ावा दिया जा सकता है? स्कूलों को क्या करना चाहिए? जो स्कूल बच्चों को अलग-अलग करते हैं और उन्हें ऐसी भूमिकाएँ देते हैं जो पारम्परिक जेंडर-मानकों को बढ़ावा दें, वे रूढ़-छवियों (स्टीरियोटाइप्स) को बढ़ावा देते हैं, समर्थन देते हैं और उन्हें आगे बढ़ाते हैं। यह कठोर व्यवस्था लड़कियों को नेतृत्व करने से दूर रखती है और उन्हें देखभाल करने की भूमिकाओं में रख देती है। दूसरी ओर, लड़कों को आक्रामक रूप से प्रतिस्पर्धी होने की तरफ़ धकेला जाता है जो उनके मानसिक विकास और समानुभूति विकसित करने की क्षमता को प्रभावित करता है।

> जेंडर विभेदन का प्रभाव बहुत गहरा होता है : लड़कियाँ इस सन्देश को आत्मसात कर लेती हैं कि उनका मोल आज्ञा पालन और कर्मठता से बँधा हुआ है, जो उन्हें अपनी क्षमताओं को निरन्तर कम करके आँकने के लिए मजबूर कर देता है। इसके उलट लड़कों को यह बताया जाता है कि उनकी क्षमता नैसर्गिक होती है जिससे उनमें पात्रता और अनियंत्रित महत्त्वाकांक्षा की संस्कृति को बढ़ावा मिलता है। यह व्यवहार व्यक्तिगत आत्म-सम्मान और प्रेरणा को नुक़सान पहुँचाता है और अगली पीढ़ी को अपनी व्यक्तिगत व कामकाजी ज़िन्दगियों में इन पूर्वाग्रहों को दोहराने के लिए तैयार करता है। लड़के-लड़कियों, दोनों को ही अपनी सम्भावनाओं तक पहुँचने से रोकने वाले संरचनात्मक विषमता के इस दुष्चक्र से बचा नहीं जा सकता। चूँकि परिवार धीरे-धीरे बदलते हैं इसलिए स्कूलों को इस दुष्चक्र को तोड़ना होगा। तभी जाकर हर एक बच्चा डर, बन्धनों या उपहास के बिना विभिन्न क्षमताओं को खोजने के लिए समर्थ हो पाएगा। अगर स्कूलों में बदलाव नहीं होता तो हमें विवेचनात्मक ढंग से और समानुभूति के साथ सोचने वाले ऐसे नेतृत्वकर्ता कहाँ से मिलेंगे जो बिना पूर्वाग्रह के नवाचार कर सकें और एक ऐसे समाज में अपना योगदान दे सकें जो जीवन के हर एक क्षेत्र में निष्पक्षता और विविधता को महत्त्व देता हो।

स्कूल ऐसी योजना बना सकते हैं जो जेंडर को इस्तेमाल करने वाली प्रक्रियाओं और दस्तूरों को रोकें। खेल व संगीत शिक्षकों सहित स्कूल के समस्त क़िरदार अपनी-अपनी योजनाएँ बना सकते हैं। मेरी जेंडर क्लास के कुछ विद्यार्थी, जो शिक्षक बनने का प्रशिक्षण ले रहे हैं, कक्षा के ढर्रे को देखने के बाद बदलावों की योजना बनाते हैं। कभी-कभी वे जेंडर-आधारित रूढ़-छवियों को चुनौती देने, समावेश को बढ़ावा देने और जेंडर-निष्पक्ष जैसे विषयों वाली इकाई योजनाएँ बनाते हैं। इसके लिए अपनाई जाने वाली युक्तियों में समुदाय की महिलाओं को कक्षा में आमंत्रित करना, मीडिया विश्लेषण (कोई विज्ञापन क्या सन्देश लिए रहता है?) के इर्द-गिर्द चर्चाएँ आयोजित करना, महिला कवियों पर ध्यान केन्द्रित करना, रोल प्ले (भूमिका निर्वाह) गतिविधियाँ करना और जीवनियों के प्रोजेक्ट तैयार करना वग़ैरह शामिल होती हैं।

जेंडर के दायरे

स्कूलों में, उपस्थित बच्चों की संख्या के कारण ही जेंडर की श्रेणी उभरती है। इससे नारीत्व या पुरुषत्व के एक सामूहिक

रूप को बल मिलता है। स्कूली ढाँचे, प्रशिक्षण व्यवस्थाएँ और पुरस्कार के पदानुक्रम आक्रामक पुरुषत्व और दब्बू नारीत्व को बढ़ावा देते रहते हैं। स्कूल में लड़कों को दरवाज़ों के निकट बैठाकर और प्रतिस्पर्धी खेलों में उनकी भागीदारी को प्रोत्साहित करके आक्रामक पुरुषत्व को मज़बूती प्रदान करते हैं, साथ ही लड़कियों को शिक्षिका के समीप बैठाकर, उनमें नियमों व रूढ़ियों का अनुपालन करने वाले आचरण, सहयोगात्मक गतिविधियों और सहायक भूमिकाओं को प्रोत्साहित करके नारीत्व की भावना को बढ़ावा देते रहते हैं।

स्कूल के दौरों के दौरान, मैंने अकसर देखा है कि जब शिक्षक जेंडर इलाक़ों की जान-बूझकर की गई व्यवस्था को तोड़ने की कोशिश करते भी हैं, तो बच्चे ख़ुद ही अपने रिवाज़ी जेंडर-आधारित व्यवहारों पर लौट जाते हैं। बच्चे जेंडर से जुड़ी व्यवस्थागत तब्दीलियों पर सवाल उठाते हैं, उनका विरोध करते हैं और जेंडर से जुड़े रूढ़िबद्ध व्यवहारों को ही पुनरुत्पादित करते हैं। उदाहरण के लिए, लड़कियाँ क्लास को शिक्षिका की अनुपस्थिति में शान्ति बनाए रखने की याद दिलाती रहती हैं। कुछ लड़कियाँ ख़ुद ही अपने ऊपर 'बात करने वाले' विद्यार्थियों की सूची बनाने की ज़िम्मेदारी ले लेती हैं। वे सिर्फ़ क्लास की निगरानी ही नहीं कर रही होतीं बल्कि 'अच्छी, अनुशासित लड़कियों' के रूप में ख़ुद की निगरानी भी कर रही होती हैं।

स्कूल बार-बार "सभी बच्चे फुटबॉल खेल सकते हैं" जैसी बातें करके जेंडर श्रेणियों के महत्त्व को कम करने का प्रयास कर सकते हैं। इसके साथ ही स्कूलों को लड़कियों को समर्थ भी बनाना चाहिए : "हमारे यहाँ लड़कियों की क्रिकेट टीम है और हमें उन्हें अपने कौशल को तराशने के लिए समय देना होगा"; "ऐतिहासिक रूप से हमने लड़कियों को कक्षा में या खेल के मैदान पर नेतृत्व करने का मौक़ा नहीं दिया है – क्या कोई लड़की स्पोर्ट्स टीम का नेतृत्व कर सकती है?"; "अगर नियमित और पूरा मन लगाकर अभ्यास किया जाए तो कोई भी तेज़ भाग सकता है"; और लड़के-लड़कियों, दोनों को ही फ़र्नीचर उठाने, उपस्थिति रजिस्टर को सम्भालने आदि कामों के लिए बुलाया जा सकता है।

खेल मैदान में लड़के और लड़कियाँ

स्कूल में खेल का मैदान ऐसा स्थान होता है जहाँ लड़के, जो बड़े समूहों में होते हैं, अकसर मैदान के बीच की जगह पर क़ाबिज़ हो जाते हैं और लड़कियाँ, जो दो-तीन के गुट में होती हैं, अकसर किनारों पर रह जाती हैं – या तो चहलक़दमी करते या बात करते हुए। इस तरह की प्रशंसा कि "अरे! तुम लड़की होकर भी इतना तेज़ भागती हो!" भी लड़कियों के पूरे वर्ग का अवमूल्यन करती है। आइए हम अलग-अलग स्कूलों में खेल के मैदानों पर किए गए अवलोकनों से निकले कुछ अवसरों पर नज़र डालते हैं और देखते हैं कि किस तरह रूढ़-छवियों को चुनौती दी गई थी।

दिल्ली के एक ग़ैर-सरकारी प्राथमिक स्कूल में, जहाँ मैं पर्यवेक्षक थी और अपने शोध के लिए विवरण इकट्ठा कर रही थी, शारीरिक शिक्षा के पीरियड के बाद क्लास बैठी थी। एक शिक्षक ने उनसे पूछा, "आज तुम लोगों ने क्या खेला?" "फुटबॉल, सर!" तुरन्त ही जवाब आया। शिक्षक की प्रतिक्रिया भी स्वतः ही सामने आई, "बढ़िया! लड़कियों ने क्या किया?" एक लड़की बोली, "सर, मैं कप्तान थी!"

एक 10 साल की बच्ची बोली, "मेरी क्लास खो-खो खेल रही है। मैं भी खेलती, लेकिन मुझे चोट लगने का डर है।" शिक्षक बोले, "चोट लगने को लेकर तुम्हारी चिन्ता को मैं समझता हूँ और ऐसा महसूस करने में कुछ ग़लत नहीं है। अभी के लिए, जाओ थोड़ा खेलो।"

एक प्राथमिक स्कूल में प्रशिक्षु के रूप में मौजूद एक छात्र-शिक्षिका ने बताया कि एक लड़का उसके पास आया और बोला, "मैडम, मैं भी दौड़ूँगा! मुझे एक मौक़ा दें। आप मुझे लड़कियों (जो शुरुआती बिन्दु पर खड़ी थीं) के पीछे खड़ा कर सकती हैं, उनसे बहुत पीछे। इसके बाद भी आप देखना मैं उन सबको पीछे छोड़ दूँगा।" शिक्षिका बोलीं, "तुम्हारे उत्साह की दाद देती हूँ! लेकिन अभी के लिए, हम दूसरों का उत्साह बढ़ाएँगे और उनके तेज़ दौड़ने की सराहना करेंगे!"

एक शहरी क्षेत्र के प्राथमिक स्कूलों में हमने पाया कि 8-10 साल की उम्र के छोटे-छोटे लड़के-लड़कियों को भी दौड़ के दौरान पृथक समूहों में रखा जाता है। लड़कियाँ सिर्फ़ अन्य लड़कियों के साथ प्रतिस्पर्धा करती हैं और लड़के अन्य लड़कों के साथ। जब लड़के दौड़ते थे तो हर कोई उनका उत्साह बढ़ाता था, लेकिन जब लड़कियाँ दौड़ती थीं तो सिर्फ़ कुछ लड़कियाँ ही उनका उत्साह बढ़ाती थीं। ऐसी ही एक दौड़ के दौरान शिक्षक ने लड़कियों को ज़ोर-से आवाज़ लगाकर कहा, "सावधानी रखना!" और "ज़रा ध्यान से!" एक लड़की ने उतनी ही ज़ोर-से जवाब दिया, "कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता! मुझे तो मज़ा आ रहा है!"

एक उच्च माध्यमिक स्कूल के खेल के मैदान में लड़कियाँ खो-खो खेल रही थीं। एक लड़की जीत रही थी और जल्दी ही एक लड़का चिल्लाया, "अरे मैडम! पहले अपना दुपट्टा तो सम्हाल लो।" दूसरे बच्चे हँसने लगे। वह लड़की सचेत हो गई और परिणामस्वरूप उसके प्रदर्शन में गिरावट आ गई। अगली क्लास में, शिक्षक ने यह सुनिश्चित किया कि हर कोई ऐसे कपड़ों में खेल सके जो खेल में बाधा न डालते हों।

किसी का उपहास बनाना उनके लिए एक परोक्ष दबाव पैदा कर देता है और उपमाएँ, तिरस्कार व फ़तवे आत्म-सम्मान को प्रभावित करते हैं। हम उपहास को कैसे रोक सकते हैं? ऐसे कुछ तरीक़े हैं जो बच्चों के बीच की अन्तःक्रियाओं में संवेदनशीलता लाने में मदद कर सकते हैं। जैसे डराने-धमकाने के विरुद्ध सख़्त नियम बनाना, सचेत होकर सुनने का प्रशिक्षण, बच्चों को पहनावे के बारे में कम सचेत बनाना और इस बारे में ज़्यादा सचेत बनाना कि वे क्या कह रहे हैं और शब्दों के महत्त्व और प्रभाव के बारे में खुलकर बात करना।

काम का जेंडर-आधारित बँटवारा

कक्षा की बात करें तो लड़के फ़र्नीचर उठाते हैं और गेट खोलते हैं, जबकि लड़कियाँ वितरण के कार्यों को सम्हालती हैं, शिक्षक को सहयोग देती हैं और रिकार्डों को सम्हालती हैं। इस तरह का बँटवारा समाज द्वारा उन्हें दी गई भूमिकाओं को दर्शाता है। लड़कियाँ कार्यकुशलता और देख-रेख पर ध्यान केन्द्रित करती हैं, नोट्स बनाती हैं, कार्यक्रमों की योजनाएँ बनाती हैं, जबकि लड़कों को नेताओं के रूप में चुना जाता है और नेतृत्व की भूमिकाएँ लेने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है, जैसे क्लास मॉनीटर या टीम का कप्तान।

लड़कों को सार्वजनिक भूमिकाओं, नेतृत्व और औपचारिक कार्यों के लिए प्रशिक्षित किया जाता है, जबकि लड़कियों को घरेलू एवं देखभाल के कार्यों तक सीमित कर दिया जाता है जिन्हें कमतर मूल्य का माना जाता है और उनके लिए कम मेहनताना मिलता है। अलग-अलग सामाजिक वर्गों में जेंडर भूमिकाओं का विभाजन ज़्यादा स्पष्ट रूप से अलग-अलग होता है। निम्न वर्गों की लड़कियों से अपेक्षा की जाती है कि वे घरेलू ज़िम्मेदारियाँ सम्हालें और वयस्कों के रूप में रोज़गार हासिल करने के लिए बुनियादी कौशल सीखें, जबकि उच्च वर्ग की लड़कियों को सफल पुरुषों की जीवनसाथी बनने के लिए तैयार किया जाता है और घरेलू व नेतृत्व-सम्बन्धी, दोनों ही भूमिकाओं के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। मैंने एक स्कूल में एक वाद-विवाद में भाग लिया था जहाँ एक लड़की द्वारा अपने तर्क सामने रखने के बाद संचालक ने कहा, "आपने सुना इसने कितनी सौम्यता और कोमलता से अपनी बात कही? लड़कियों को इस तरह वाद-विवाद करते सुनना कितना अच्छा लगता है!" इस तरह, नेतृत्व की भूमिका के लिए प्रशिक्षित करते हुए भी इस लड़की और सभी श्रोता लड़कियों को यह याद दिलाया जाता है कि उन्हें 'स्त्रियों जैसा' होना है। मज़े की बात यह थी कि वहाँ जजों की पूरी टीम ऐसी सफल महिलाओं से बनी थी जिन्होंने लड़कों की तारीफ़ सौम्यता के लिए की और लड़कियों की अपनी बात पर दृढ़ रहने के लिए!

श्रम के इस विभाजन का एक और पहलू सेवा के विचार से जुड़ा हुआ है – समाज में लड़कियों की भूमिका देखभाल और पालन-पोषण करने की है। अकसर यह दलील दी जाती है कि सभी महिलाएँ/ लड़कियाँ स्वाभाविक रूप से मैत्रीपूर्ण और दूसरों की परवाह करने वाली होती हैं और दूसरों की ज़रूरतों को ख़ुद की ज़रूरतों से पहले रखती हैं। ऐसी दलीलों में एक बुनियादी दोष है। ये सामाजिक भूमिकाएँ हैं, किसी ख़ास जैविक श्रेणी से बँधी नहीं हैं।

जिस तरह यह दावा हास्यास्पद है कि लम्बे लोग बेहतर निर्णय लेते हैं, उतना ही अतार्किक यह दावा है कि सभी लड़कियाँ स्वाभाविक रूप से ज़्यादा परवाह करने वाली और भावुक होती हैं व सभी लड़के ज़्यादा तार्किक और व्यावहारिक होते हैं।

लड़के-लड़कियाँ, दोनों स्कूल व समाज में अपनी भूमिकाओं को इस आधार पर समझते व स्वीकारते हैं कि उन्हें किन बातों के लिए महत्त्व दिया जा रहा है। अपने कार्यों का बोध धीरे-धीरे आत्मसात किया जाता है। लड़कियों के मन में सम्भवतः इस तरह के संवाद चलते होंगे, "शिक्षक बात मानने के लिए, विरोध न करने के लिए और आज्ञाकारी होने के लिए मेरा मोल करते हैं; मैं उन कामों को करने के लिए पहचानी जाऊँगी और मेरा महत्त्व होगा जो स्कूल को ज़्यादा कुशलतापूर्वक चलाने में मदद करते हैं।" स्कूल ऐसी परिस्थितियाँ बना देते हैं जहाँ लड़कियाँ अनुशासित, आज्ञाकारी और बातें मानने वाली विद्यार्थियों के रूप में अपनी भूमिकाओं को स्वीकार कर लेती हैं। यह पैटर्न तब टूटता है जब बच्चों को बातों को स्वीकार व अस्वीकार करने, आज्ञाकारी और अनियंत्रित होने, अनुशासित और बातूनी होने का अवसर दिया जाएगा। कोई शिक्षक चुपचाप रहने के लिए किसी लड़के की या दबंग होने के लिए किसी लड़की की तारीफ़ कर सकता है और इस तरह, कक्षा में सम्मान के भाव और सुनने की क्षमता के साथ सभी प्रकार के व्यवहारों के लिए जगह बनाई जा सकती है।

लड़के-लड़कियों, दोनों को शिक्षकों व साथियों की मदद करने के लिए बराबरी से बुलाया जा सकता है; लड़के-लड़कियों दोनों को कक्षा की स्वच्छता और रखरखाव से जुड़े काम सौंपे जा सकते हैं। सभी प्रतिस्पर्धी खेलों में मिश्रित जेंडरों वाली टीमें होनी चाहिए और दोनों जेंडरों को दृढ़ता और आत्म-विश्वास विकसित करने के लिए प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

शिक्षक-विद्यार्थी अन्तःक्रियाएँ

स्कूल का एक और महत्त्वपूर्ण पहलू है शिक्षक-विद्यार्थी अन्तःक्रियाएँ। आइए हम इन धारणाओं को समझने और इनकी पड़ताल करने के लिए कक्षा की कुछ घटनाओं पर नज़र डालें।

एक क्लास में विद्यार्थी धमाल मचा रहे हैं। शिक्षिका लड़कियों को कहती हैं, "बात क्यों नहीं सुनती हो? ठीक से व्यवहार क्यों नहीं कर रही हो?" वह लड़कों को कहती हैं, "तुम लोग गम्भीरता क्यों नहीं दिखा रहे? अगर तुम गम्भीर नहीं होगे तो पैसा कैसे कमाओगे और अपने परिवार को सहारा कैसे दोगे?"

अकसर, लड़कियों को बात न मानने के लिए, आज्ञाकारी न होने के लिए डाँटा जाता है। जबकि हल्ला मचाने वाले ढीठ लड़कों को यह कहते हुए डाँटा जाता है कि उन्हें गम्भीर व ज़िम्मेदार होना चाहिए।

किसी परीक्षा में एक लड़की और एक लड़के को बराबर अंक मिलते हैं। शिक्षिका लड़की से कहती हैं, "बहुत बढ़िया! तुमने मेहनत की!" लड़के से कहा जाता है, "तुमने ठीक किया! तुम्हारे सभी सूत्र ग़लत थे, लेकिन तुम कुशाग्र हो और इससे बेहतर कर सकते हो।"

जेंडर पर आधारित अन्तर्निहित सन्देशों में बारीक़ अन्तर होते हैं। लड़कियों को बताया जाता है कि उनका मोल उनके 'काम', प्रयास और इस आधार पर किया जाता है कि उन्होंने कितना समय दिया। लड़कों को बताया जाता है कि वे अच्छा दिमाग़ और योग्यता रखते हैं और उनके भीतर 'सम्भावना' और 'क्षमता' है।

शिक्षकों को इस तरह का फ़ीडबैक देने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है जो व्यक्तिगत प्रयास और क्षमताओं पर केन्द्रित हो। लड़के-लड़कियों की उतनी ही प्रशंसा उनकी तार्किक सोच, समस्या सुलझाने के कौशलों के लिए की जा सकती है जितनी कि उनके परिश्रम और कर्मठता के लिए। हम मन-ही-मन चल रहे उन आन्तरिक संवादों को किस तरह बदल सकते हैं जिन्हें लड़के-लड़कियाँ, दोनों अपनी क्षमताओं के बारे में आत्मसात कर लेते हैं? कक्षाओं के भीतर ऐसे सुरक्षित स्थान बनाकर जहाँ बच्चे अपने डरों को बयाँ कर सकें, उन्हें पहचान सकें और इस बात से बे-परवाह होकर अपने भविष्य की योजना बना सकें कि उनका जेंडर क्या है। इस तरह लड़के-लड़कियों, दोनों को समर्थ बनाया जा सकता है।

अन्त में

जेंडर ऐसी हक़ीक़त है जो स्कूली संस्कृति में सर्वत्र व्याप्त है। यह रोज़ाना के स्कूली जीवन के हर पहलू को प्रभावित करता है जिसमें पाठ्यचर्या की विषयवस्तु, शिक्षक-विद्यार्थी अन्तःक्रियाएँ, पाठ्येतर गतिविधियाँ, खेल और सामाजिक प्रक्रियाएँ शामिल होती हैं। कक्षा की प्रक्रियाएँ और छिपी हुई पाठ्यचर्या जेंडर से जुड़ी प्रचलित धारणाओं को तोड़ने की बजाय उन पर और बल देती हैं। शिक्षकों, स्कूल के नेतृत्व और स्कूल के सभी क़िरदारों को इस बात के प्रति जागरूक होना चाहिए कि स्कूल की संस्कृति और स्कूल के अनुभव विद्यार्थियों के लिए अर्थ पैदा करते हैं। बदलाव लाने के लिए आगे बढ़ने का रास्ता है स्कूल में अपनी रोज़ की क्रियाओं, प्रक्रियाओं और व्यवहारों में सोच-विचार को शामिल करना। इस बात को समझना सबसे ज़रूरी है कि किसे क्या करने के लिए कहा जा रहा है। कौन क्या कर रहा है? बहुत सचेत होकर स्कूल के सभी क़िरदारों को इस बात के लिए प्रतिबद्ध होना चाहिए कि सभी भूमिकाओं को जेंडरों के बीच नए सिरे से बाँटा जाए।

निधि गुलाटी दिल्ली विश्वविद्यालय में शिक्षक-शिक्षा की प्राध्यापक हैं। वे फील्ड, नीति व शिक्षणशास्त्र के स्तरों पर शिक्षा से जुड़ी हुई हैं। उनका शोध का क्षेत्र बच्चों की ज़िन्दगियों और उनके सीखने, स्कूली शिक्षा के पहलुओं, शिक्षक की पहचान, लोकप्रिय संस्कृति और बचपन की प्रकृति जैसे विषयों के मिलन बिन्दु से सम्बन्धित है। वे विभिन्न पाठ्यक्रम, नीति और शिक्षक-शिक्षा सुधार समितियों की सदस्य रही हैं। वे नियमित रूप से बच्चों के लिए फ़िल्मों की समझ और विश्लेषण पर निकलने वाले एक स्तम्भ में लिखती रहती हैं। उनसे nidhi.a.gulati@gmail.com पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी **पुनरीक्षण :** सुशील जोशी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

कक्षा में जिज्ञासा को पोषित करना | कुछ अनुभव, कुछ सीख

अनघ पुरन्दरे

हमारे आस-पास की दुनिया के बारे में हमारी जिज्ञासा अकसर उसके बारे में जानने-समझने के लिए हमारी तीव्र प्रेरणा बनती है। सवाल पूछने के लिए विद्यार्थियों को प्रोत्साहित करना और उनके सवालों के जवाब तलाशने में मदद करना विद्यार्थियों की सहज जिज्ञासा बनाए रख सकता है और स्कूल में उनके सीखने को प्रेरित कर सकता है। इस लेख में, मैं बच्चों को सवाल पूछने के लिए प्रेरित करने के अपने कुछ अनुभव और इस अभ्यास से मैंने जो सीखा उसे साझा कर रहा हूँ।

मैंने इस चुनौती का सामना अपने शिक्षण के शुरुआती दिनों में किया था। जब आँखों में सपने लिए, बड़े उत्साह के साथ अनुभवहीन विज्ञान शिक्षक के रूप में मैंने एक छोटे वैकल्पिक स्कूल में पढ़ाना शुरू किया था। जोश से भरे विद्यार्थियों ने मुझ पर सवालों की बौछार कर दी थी। एक नए शिक्षक के लिए यह देखना बहुत ही अद्भुत था कि विद्यार्थियों के अपने रोज़मर्रा के अनुभव इन सवालों को प्रेरित कर रहे थे। बारिश वाले एक दिन, कक्षा-3 का एक विद्यार्थी दौड़ते हुए मेरे पास आया। वह अपने कोमल हाथों में एक फिसलू मेंढक को पकड़े रखने की कोशिश कर रहा था। उसने मुझसे पूछा, "मेंढक की सू-सू (पेशाब) छूने पर मेरी सू-सू की तरह गर्म क्यों नहीं लगती?" इससे पहले कि मैं इस सवाल के उपजने की सम्भावित जड़ के बारे में सोच पाता उसने ही मुझे बताया कि उसे कैसे पता चला कि उसकी सू-सू गर्म होती है! तब मुझे यह स्पष्ट हो गया कि यह और इस तरह के कई और सवाल, ख़ासतौर से छोटे बच्चों के सवाल, उनके अनुभवों और अवलोकनों से जुड़े हुए होते हैं। जो बात मुझे स्पष्ट नहीं थी, वह यह थी कि इस तरह के सवालों के जवाब मैं कैसे दूँ।

एक कार्यनीति के रूप में जवाबी-सवाल पूछना

शुरुआत में मैंने सोचा कि अगर मैं बच्चों के सवालों के जवाब दे दूँ तो वे सीखने के अवसर से वंचित रह जाएँगे। इसके अलावा, मुझे लगा कि बच्चे अपने सारे सवालों के जवाब पाने के लिए मुझ पर निर्भर हो जाएँगे। यह उनके लिए उस वक़्त मेरे दिमाग़ में जो योजना थी उसके विपरीत स्थिति थी। मेरी योजना थी स्वतंत्र प्रश्नकर्ता बन पाने में बच्चों की मदद करना। मैंने मेरे पास आने वाले हर एक सवाल से निपटने के लिए जवाबी-सवाल पूछने की कार्यनीति (counter-questioning strategy) अपनाने का निर्णय लिया। तो, मैं उनके सवालों के जवाब में उनसे इस तरह के सवाल करता जिनके जवाब उनके मूल सवाल के जवाब की ओर संकेत करते। मैं बच्चों की उम्र और स्तर को ध्यान में रखते हुए इन जवाबी सवालों को गढ़ता था। इसका मतलब यह भी था कि मुझे उनके सवाल को समझना, जवाब तैयार करना और फिर जवाबी-सवाल बनाना था। इस कार्यनीति के साथ ख़ुद को ढालने में कुछ समय लगा।

लेकिन मैंने पाया कि इस कार्यनीति से जिज्ञासु खोजी बनने की बजाय विद्यार्थियों ने मुझसे सवाल पूछने ही कम कर दिए। इसके साथ ही उनकी यह शिकायत थी कि मैं उनके सवालों का कभी जवाब ही नहीं देता। जो इस बात को स्पष्ट रूप से दर्शा रही थी कि मेरी जवाबी-सवाल पूछने की कार्यनीति विफल हो गई थी।

वैसे जवाबी-सवाल की यह कार्यनीति पूरी तरह से विफल नहीं हुई थी, क्योंकि कक्षा-5 और 6 के विद्यार्थियों के साथ यह कारगर रही थी। इस समय बच्चे अपनी मातृभाषा मराठी (माध्यम) से अँग्रेज़ी (माध्यम) में आने के बदलाव से गुज़र रहे थे। वे कई नए अँग्रेज़ी शब्दों का सामना कर रहे थे जिनका अर्थ उन्हें नहीं पता था। कक्षा के दौरान अकसर वे मुझसे कई ऐसे शब्दों का मतलब पूछते थे जिनसे वे अनजान थे। मैं अपनी जवाबी-सवाल करने की कार्यनीति को थोड़ा-सा बदलकर पहेली बूझो कार्यनीति बना देता था। मैं सीधे-सीधे किसी नए शब्द का अर्थ बताने की बजाय ऐसे वाक्य बनाता था जिनमें वह नया शब्द शामिल हो और उसके अलावा बाक़ी सभी शब्द ऐसे हों जिन्हें बच्चे पहले से जानते हों। फिर उनके लिए उस शब्द का अर्थ पता लगाना आसान हो जाता था। बच्चों को इन पहेलियों को हल करने और इस तरह मज़ेदार अन्दाज़ में सीखने में बहुत मज़ा आता था।

प्रश्न-पेटी

अपने पिछले अनुभव पर ग़ौर करते हुए मुझे एहसास हुआ कि सभी सवालों के लिए मैं समान रवैया अपना रहा था। एक छोटे वैकल्पिक स्कूल के लिए यह कोई बड़ी समस्या नहीं थी। हम आसानी से समझ में न आने वाले उत्तर को समझने में

बहुत समय ख़र्च कर सकते थे। पर मुझे एहसास हुआ कि यदि विद्यार्थियों की संख्या बढ़ती है तो इस तरीक़े में बहुत अधिक समय और ऊर्जा की ज़रूरत होगी। न सिर्फ़ विद्यार्थियों की संख्या बल्कि स्कूल के पाठ्यक्रम की अन्य ज़रूरतों के कारण भी इस तरीक़े के साथ आगे बढ़ने में मुश्किल होगी।

जब मैं एक छोटे, वैकल्पिक स्कूल से एक बड़े और अधिक औपचारिक परिवेश वाले स्कूल में गया तो मैंने एक अलग कार्यनीति अपनाने का निर्णय लिया। इस समय तक मुझे शिक्षण का थोड़ा और अनुभव प्राप्त हो चुका था। मैंने पढ़ना और अपने साथी शिक्षकों के साथ कक्षा के अनुभवों पर चर्चा करना शुरू कर दिया था। 'प्रश्न-पेटी' का सुझाव भी मुझे मेरे एक सहकर्मी ने ही दिया था।

जैसा कि हमने मेंढक की सू-सू वाले सवाल के मामले में देखा था, विद्यार्थियों के सवाल कहीं से, कुछ भी हो सकते हैं। कई बार ये कक्षा के सामान्य कामकाज में भी व्यवधान उत्पन्न कर सकते हैं। पर साथ ही मैं नहीं चाहता था कि विद्यार्थी सवाल पूछने के प्रति हतोत्साहित हों। प्रश्न-पेटी वाली तरक़ीब इसका एक हल थी। शैक्षणिक वर्ष की शुरुआत में मैंने हर सेक्शन के कुछ विद्यार्थियों से पुराने जूते का डिब्बा लाने के लिए कहा। हमने इसे सजाया और कक्षा में उसे प्रश्न-पेटी बनाकर रख दिया। विद्यार्थियों को सवाल लिखने के लिए मैंने एक तरफ़ से उपयोग किए जा चुके काग़ज़ की पर्चियों को पेटी में लगा दिया। जब भी किसी के मन में कोई ऐसा सवाल उठता जो सीधे तौर पर कक्षा के कामकाज से सम्बन्धित न हो, तो वह उसे काग़ज़ की पर्ची पर अपने नाम के साथ लिखकर प्रश्न-पेटी में डाल देता था। बच्चों को पूरे दिन में कभी भी अपने सवालों को प्रश्न-पेटी में डालने के लिए प्रोत्साहित किया गया। जब कभी मेरा पूर्व नियोजित पाठ पूरा हो जाता और मेरे पास अतिरिक्त वक़्त होता, तब मैं उस प्रश्न-पेटी को खोलता और उसमें से कुछेक सवालों को लेता। पूरी कक्षा मिलकर सम्भावित जवाबों पर चर्चा करती और उनके जवाब पाने के लिए आगे की खोजबीन करने की योजना बनाती। कभी-कभी हमें जवाब का पता लगाने के लिए आगे बढ़ने से पहले सवाल पूछने वाले विद्यार्थी से पूछे गए सवाल को स्पष्टता से समझना पड़ता।

प्रश्न-पेटी के उपयोग से सवाल उपजने, सवाल पूछने में विद्यार्थियों की दिलचस्पी बनाए रखने और सबसे महत्त्वपूर्ण, सवालों के जवाब तलाशने की प्रक्रिया में साफ़तौर पर फ़ायदा हुआ। इसके अलावा, प्रश्न-पेटी खोलना एक ऐसी गतिविधि बन गई जिसका सभी बेसब्री से इन्तज़ार करते थे। इससे कक्षा को समय पर निर्धारित कार्य पूरा करने के लिए प्रोत्साहन मिला, ताकि प्रश्न-पेटी खोलने के लिए समय मिल सके। प्रश्नों के साथ उनके नाम जोड़ने से उनमें स्वामित्व और ज़िम्मेदारी की भावना विकसित हुई, जिससे खोज में उनकी दिलचस्पी लगातार बनी रही।

मेरी सीखें

इन अनुभवों के द्वारा, एक शिक्षक के तौर पर मेरी कुछ महत्त्वपूर्ण सीखों को रेखांकित करना चाहता हूँ :

- जितने विविध अनुभव मैं विद्यार्थियों को अपने शिक्षण-सम्बन्धी तरीक़ों के चयन द्वारा दे सका उससे उन्हें अवलोकन करने और विविध सवालों को पूछने के लिए उतने ही अधिक अवसर मिले।
- विद्यार्थियों के सवालों को सम्हालने के मेरे तरीक़ों का चयन विद्यार्थियों की उम्र, उनकी मौजूदा जानकारी/ ज्ञान, पाठ्यक्रम की सीमाओं और आवश्यकताओं व विद्यार्थियों द्वारा माँगी गई जानकारी की प्रकृति पर निर्भर करता था।
- मैंने सन्दर्भ के आधार पर सही जानकारी खोजने के लिए सुरक्षित जगह देने और उनके सवालों पर स्वामित्व का भाव पैदा करने के बीच सन्तुलन बनाने को प्राथमिकता दी।

इनके अलावा, कुछ ऐसे अन्य बिन्दु भी हैं जिनसे, मेरे ख़्याल से, मुझे अपने विद्यार्थियों की जिज्ञासा को पोषित करने के तरीक़े खोजने की अपनी कोशिश में मदद मिली। इनमें सबसे प्रमुख है सबके सामने अपने ज्ञान की सीमा को स्वीकारना। मैं यह कहने को प्राथमिकता देता हूँ, "मुझे नहीं पता, पर चलो पता करते हैं/ करता हूँ।" इससे मुझे न सिर्फ़ विश्वसनीय जवाब तलाशने का या स्थिति के अनुरूप उचित प्रतिक्रिया तैयार करने के लिए समय मिल जाता था, बल्कि ऐसा कहना विद्यार्थियों को यह भी जताता था कि यदि किसी चीज़ के बारे में उन्हें नहीं पता है तो वे भी उसकी खोज कर सकते हैं। दूसरी बात, मुझे लगता है कि विद्यार्थियों को सवाल पूछने के लिए एक सुरक्षित स्थान प्रदान करना उन्हें अधिक सवाल पूछने के लिए प्रोत्साहित करने में समान रूप से महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस सुरक्षित स्थान में यह भी शामिल है कि हम उनकी और अपनी ग़लतियों को किस तरह से देखते हैं। अन्त में, हमें यह याद रखना चाहिए कि सवालों से भरी कक्षा इसमें शामिल सभी लोगों के लिए संयुक्त रूप से एक रोचक और नया अनुभव होती है।

अनघ पुरन्दरे अज़ीम प्रेमजी स्कूल, बेंगलूरु में शिक्षक हैं। विज्ञान और जीवविज्ञान के शिक्षक होने के नाते उनकी रुचि इस बात में है कि बच्चे विज्ञान और अन्य रोचक तथ्यों व घटनाओं को किस तरह सीखते-समझते हैं। उनसे anagh.purandare@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : प्रियेश गुप्ता **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

समावेशन की संस्कृति को बढ़ावा देना | एक कक्षा का वृत्तान्त

अनन्या बनर्जी

छत्तीसगढ़ के रायगढ़ ज़िले में स्थित शासकीय प्राथमिक शाला बाम्हनपाली, एक लम्बी सड़क के किनारे स्थित है। यह सड़क बाम्हनपाली गाँव को एक छोटे कस्बे खरसिया से जोड़ती है। जिस जगह यह प्राथमिक शाला स्थित है वह विद्यार्थियों और शिक्षकों दोनों के लिए सुविधाजनक है। स्कूल में आप जैसे ही प्रवेश करते हैं सबसे पहले आपको इसके परिसर में फेंका गया मलबे का ढेर नज़र आता है। स्कूल भवन में कक्षाएँ-3, 4 और 5 एक हॉल में लगती हैं, जबकि कक्षा-1 और 2 के विद्यार्थी हॉल के बगल वाले कमरे में बैठते हैं। भवन में एक और कमरा है, पर वह टूटकर गिर रहा है इसलिए उसको उपयोग में नहीं लिया जाता। दिवाली के समय एक हादसा भी हो गया था। उस कमरे की छत का पंखा (सीलिंग फैन) टूटकर नीचे गिर गया था, लेकिन छुट्टियाँ होने के कारण उस कमरे में विद्यार्थी नहीं थे इसलिए किसी को चोट नहीं आई।

इस स्कूल में जो विद्यार्थी पढ़ते हैं वे बाम्हनपाली गाँव में रहते हैं। गाँव के समुदाय की मिली-जुली जातीय संरचना है। यहाँ ज़्यादातर लोग अनुसूचित जाति (एससी) और अन्य पिछड़ा वर्ग (ओबीसी) के हैं और कुछ लोग आदिवासी समुदायों के हैं। बच्चों के माता-पिता अलग-अलग व्यवसाय करते हैं, जिसमें खेती और मछली पकड़ने से लेकर दूसरे प्रदेश में (ज़्यादातर मुम्बई में) श्रमिक (प्रवासी मजदूरों) के तौर पर काम करना शामिल है। इन प्रवासी मज़दूरों के परिवारों के बच्चे अपने दादा-दादी या अन्य रिश्तेदारों के साथ रहते हैं।

मेरे स्कूल जाने का उद्देश्य, स्कूल के प्रधान शिक्षक पाण्डे सर की कक्षा को देखना था, जो गणित और पर्यावरण अध्ययन पढ़ाते हैं। मेरी उनसे पहले थोड़ी-बहुत बातचीत हुई थी और मुझे पता था कि उन्हें किताबें पढ़ना अच्छा लगता है और उनकी कक्षा में किताबों के बारे जोशीली चर्चाएँ होती हैं। उनकी कक्षाओं में विज्ञान और कहानियों का अच्छा-ख़ासा संगम रहता है। उस दिन कक्षा (तीसरी, चौथी और पाँचवीं की मिली-जुली कक्षा) में *चींटियों* पर एक अध्याय पढ़ा जा रहा था। यह अध्याय कक्षा पाँचवीं की एनसीईआरटी की पर्यावरण अध्ययन की पाठ्यपुस्तक *आस-पास* (*Looking Around*) से था।

कक्षा का आपसी संवाद

पाण्डे सर ने चींटियों पर बुनियादी जानकारी के बारे में चर्चा से कक्षा की शुरुआत की और बच्चों से पूछा कि क्या किसी ने अपने आस-पास चींटियाँ देखी हैं। जैसी कि उम्मीद थी बच्चों ने एक सुर में "हाँ" में जवाब दिया! फिर उन्होंने अपने अनुभवों को सुनाना शुरू कर दिया। एक बच्चे ने बताया कि उसे अपने घर में बड़ी-बड़ी काली चींटियाँ नज़र आती हैं, जिनके आगे का भाग किसी 'चिमटे' जैसा होता है। एक बार, ऐसी ही एक चींटी के काटने पर उसे एक दिन के लिए बुख़ार भी आ गया था। एक बच्चे ने बताया कि उसने देखा है कि खाने का कुछ भी समान कहीं भी पड़ा रह जाने पर उसमें हमेशा लाल चींटियाँ लग जाती हैं, और फिर उनसे छुटकारा पाना बहुत मुश्किल होता है क्योंकि वे काटती हैं। एक और छात्रा ने बताया कि उसे छोटी काली चींटियाँ पसन्द हैं क्योंकि वे किसी को नुकसान नहीं पहुँचाती हैं, और जब उनमें से कोई चींटी उसके शरीर पर चढ़कर रेंगने लगती है तो उसे सुरसुरी होती है।

पाण्डे सर ने बच्चों के हर एक शब्द को सुना और प्रत्येक बच्चा अपने विचारों को साझा करे इसके लिए उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए बीच-बीच में वे चर्चा में शामिल भी हुए। इसके बाद, वे पाठ्यपुस्तक में से अध्याय को पढ़ने लगे। प्रत्येक खण्ड के बाद वे पढ़ना रोककर बच्चों से पूछते कि वे जो पढ़ रहे हैं क्या बच्चे उसे समझ पा रहे हैं। यदि बच्चों के कोई सवाल होते तो वे उनका उत्तर देते। अध्याय के अन्त में, बच्चे चींटी की शारीरिक संरचना के बारे में थोड़ी उलझन में थे। वे इसकी तुलना मानव शरीर से कर रहे थे और समझ नहीं पा रहे थे कि एक चींटी छह पैरों के साथ, जो कि उसके शरीर में नीचे से ऊपर तक होते हैं, कैसे काम कर सकती है। पाण्डे सर ने प्रस्ताव रखा कि अगले दिन चींटी की शारीरिक संरचना को बेहतर ढंग से समझने के लिए वे उसे सूक्ष्मदर्शी से देखेंगे। इस सुझाव पर बच्चे एक साथ सहमति में चिल्लाए, क्योंकि वे सूक्ष्मदर्शी का प्रयोग करने को लेकर बहुत उत्साहित थे।

जब यह सब हो रहा था तब एक छात्रा अपनी दोस्त के साथ बड़े जोश से बातें कर रही थी और वे दोनों अपनी बातों में खोए हुए थे। पाण्डे सर ने यह देख लिया और उनसे कहा कि उन्हें

भी बताएँ कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। वह छात्रा उठी पर बोलने में थोड़ा हिचकिचा रही थी। जब उसने बोला, तो उसने बताया कि उसके समुदाय में वे लोग चींटियाँ खाते भी हैं। यह सोचते हुए कि इस अनोखी प्रथा पर उसके सहपाठी किस तरह की प्रतिक्रिया देंगे, वह चिन्तित-सी अपने चारों ओर देख रही थी। लेकिन इससे पहले कि कोई कुछ कहता, पाण्डे सर ने उसे कक्षा में सामने बुलाया और फिर उन्होंने कक्षा को बताया कि चींटियाँ प्रोटीन का बहुत ही अच्छा स्रोत भी होती हैं और बहुत से लोग उन्हें खाते हैं। फिर उन्होंने छात्रा से यह बताने को कहा कि वे लोग चींटी को किस तरह पकाकर खाते हैं। उसने बताया कि वे पहले चींटियों को पकड़ते हैं और फिर उन्हें मिर्ची पाउडर और नमक के साथ पीसते हैं, क्योंकि ऐसा न करने पर बुख़ार आ सकता है। पीसने के बाद, वे पिसे हुए पेस्ट की गोलियाँ बनाकर तलते हैं, फिर उसे खाते हैं। फिर पाण्डे सर ने पूछा कि यदि चींटियों को खाने के बाद बुख़ार आ जाए तो क्या होता है? इस पर छात्रा ने जवाब दिया कि ऐसा होने पर वे रात भर माथे पर गीले कपड़े की पट्टी रखकर सोते हैं और आमतौर पर अगली सुबह तक बुख़ार चला जाता है। कक्षा यहीं पर ख़त्म हो गई।

विश्लेषण

कक्षा में एक अत्यधिक महत्त्वपूर्ण क्षण तब आया जब एक विद्यार्थी ने चींटी खाने की अपनी सांस्कृतिक प्रथा के बारे में बताया। पाण्डे सर ने इस प्रथा को ख़ारिज करने की बजाय प्रथा के सांस्कृतिक महत्त्व को जानने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया, और इस तरह शुरुआती स्तर से ही कक्षा के भीतर विविध सांस्कृतिक पहचानों को सम्मान देने के भाव को बढ़ावा मिला। यह समावेशी नज़रिया बहुसांस्कृतिक शिक्षा के सिद्धान्तों के साथ मेल खाता है, जो विविधता का उत्सव मनाने और विद्यार्थियों के बीच विविध सांस्कृतिक अनुभवों को बढ़ावा देने की वकालत करती है।

प्राथमिक स्कूल बाम्हनपाली और पाण्डे सर सीखने के समावेशी वातावरण को बढ़ावा देने में शिक्षकों की दृढ़ता की मिसाल पेश कर रहे हैं। स्कूल अपने विद्यार्थियों की विविध ज़रूरतों को पूरा करने का प्रयास करते हुए समावेशिता के दर्शन को अपनाता है।

कुल मिलाकर, प्राथमिक स्कूल बाम्हनपाली में मेरा अनुभव समावेशी शिक्षा की परिवर्तनकारी क्षमता में मेरे विश्वास को और पुख़्ता करता है। विविधता को अपनाकर, निष्पक्षता और समावेश की संस्कृति को बढ़ावा देकर हम सीखने का एक ऐसा समावेशी माहौल बना सकते हैं जिसमें हर विद्यार्थी महसूस करे कि उसे महत्त्व दिया जा रहा है, सहयोग दिया जा रहा है और वह अपनी पूरी क्षमता तक पहुँचने में समर्थ है। निरन्तर प्रतिबद्धता और सहयोग के माध्यम से हम ऐसे समावेशी शिक्षा समुदायों का निर्माण जारी रख सकते हैं, जो विविधता का उत्सव मनाते हैं और सभी विद्यार्थियों के समग्र विकास को बढ़ावा देते हैं।

समावेशी व्यवहार बाधाओं को हटाकर और समान अवसर देकर अलग-अलग पृष्ठभूमियों, संस्कृतियों और क्षमताओं वाले विद्यार्थियों में सम्बद्धता और स्वीकार्यता की भावना पैदा करता है। विविधता का यह उत्सव, अधिक समावेशी व संयुक्त समाज की नींव में योगदान देते हुए विद्यार्थियों के बीच समानुभूति, आपसी समझ और सम्मान की भावना को पोषित करता है।

इसके अलावा, कलंक और भेदभाव को कम करने में समावेशी व्यवहार एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं, वे रूढ़िबद्ध धारणाओं को चुनौती देते हैं और सभी के लिए एक अधिक समावेशी वातावरण बनाते हैं, जिससे यह सुनिश्चित होता है कि प्रत्येक विद्यार्थी को फलने-फूलने का अवसर मिले।

एक सकारात्मक कक्षा संस्कृति विद्यार्थियों के सीखने के लिए बहुत ज़रूरी है क्योंकि यह एक ऐसे वातावरण का निर्माण करती है, जहाँ विद्यार्थी सीखने की क्रिया में सक्रिय रूप से भागीदारी करने के लिए सुरक्षित और प्रेरित महसूस करने के अलावा यह भी महसूस करते हैं कि उन्हें सहयोग दिया जा रहा है।

अनन्या बनर्जी अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन, रायपुर, छत्तीसगढ़ में रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्य करती हैं। इस भूमिका के पूर्व वे सेंट ज़ेवियर्स कॉलेज, बर्धमान, पश्चिम बंगाल के समाजशास्त्र विभाग में पढ़ाती थीं। उन्होंने समाजशास्त्र में एमफिल किया है और शिक्षा के क्षेत्र में फील्ड–आधारित शोधकार्य करने में उनकी गहरी रुचि है। उनसे ananya.banerjee@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : प्रियेश गुप्ता **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** शहनाज़

भय-रहित स्कूली माहौल का निर्माण | एक कक्षा का विवरण

अनिल एस. अंगडिकि

"स्कूल का माहौल ठीक है, और आप हमारे बच्चे का ध्यान हमसे भी ज़्यादा रख रहे हैं, लेकिन विद्यार्थियों को नियंत्रण में रखने की ज़रूरत है, वरना वे किसी की भी बात नहीं मानेंगे।"

"चूँकि आप बच्चों को सज़ा नहीं देते हैं, इसलिए मेरे बच्चे ने मुझे पलटकर जवाब देना शुरू कर दिया है। यह नहीं होना चाहिए।"

"अगर कक्षा में आपका अपने विद्यार्थियों पर नियंत्रण ही नहीं होगा तो आप उन्हें कैसे पढ़ा पाएँगे?"

"यह स्कूल में विद्यार्थियों को पढ़ाने का सही तरीक़ा नहीं है, हमने ऐसा पहले कभी नहीं देखा है; इससे वे बिगड़ सकते हैं।"

जब भी हम बच्चों के अभिभावकों से अभिभावक-शिक्षक बैठकों में या उनके घर जाकर मिलते, उनसे इसी तरह के कई और अवलोकन व सुझाव सुनने को मिलते। ये बातें स्कूल से जुड़े दूसरे हितधारकों की तरफ़ से भी सुनने को मिलती थीं जो अज़ीम प्रेमजी स्कूल, यादगिर (2012 में देश भर में शुरू हुए छह अज़ीम प्रेमजी स्कूलों में से एक) की स्थापना के शुरुआती वर्षों में हमारे स्कूली बच्चों से मिलने आते थे। उस समय एक गोदाम में कुछ बदलाव करवाकर वहीं कक्षाएँ शुरू की गई थीं क्योंकि स्कूल का स्थायी परिसर तब बनकर तैयार हो रहा था।

विद्यार्थियों के लिए मानसिक प्रताड़ना, पिटाई या भेदभाव से दूर एक भय-रहित माहौल का निर्माण करते हुए हमने लगातार लोगों से उसी तरह की बातें व प्रतिक्रियाएँ सुनीं जिनका ज़िक्र ऊपर किया गया है।

2012 में, पहली कक्षा में 32 विद्यार्थियों का नामांकन हुआ। ये सभी बच्चे आस-पास के गाँवों से ही थे और इनमें से ज़्यादातर बच्चे स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी के थे। हम अपनी स्कूल की नीति और दिशा-निर्देशों के साथ काम कर रहे थे। इनमें अधिकांशतः ऐसे घटक थे जो निशुल्क एवं अनिवार्य बाल शिक्षा का अधिकार अधिनियम या शिक्षा का अधिकार अधिनियम (आरटीई) 2009, राष्ट्रीय शिक्षा नीति, और राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा पर आधारित थे। हमारे पास अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के फ़ील्ड संस्थानों के सन्दर्भ व्यक्तियों और नेतृत्व करने वालों की एक टीम थी जिनके पास वैकल्पिक स्कूलों, ग़ैर-सरकारी संगठनों (एनजीओ) या सार्वजनिक शिक्षा प्रणाली में काम करने के अनुभव थे। इन सभी लोगों ने स्कूल में एक ऐसी विचारधारा को स्थापित करने को लेकर हमारा क्षमतावर्धन करने, हमें अभ्यास और अनुभव दिलाने में हमारी मदद की। यह विचारधारा इस सिद्धान्त पर आधारित थी कि *कोई भी बच्चा बिना किसी चिन्ता या डर के, अच्छे सम्बन्धों के साथ, और योगदान/भागीदारी के मिलने वाले समान अवसरों के साथ अपना आत्मविश्वास बढ़ा पाएगा और सीखने व अभिव्यक्त करने में सक्षम हो सकेगा।* यह हासिल करना हम सबके लिए बेहद ज़रूरी था, ताकि हम इस तरह का माहौल बनाने की सम्भावनाओं और बच्चों के सीखने पर पड़ने वाले इसके सकारात्मक असर को सामने ला पाएँ।

हमारी चुनौतियाँ

हमारी मुख्य समस्याएँ कुछ ऐसी थीं :

- हम शिक्षकों ने अभी तक ऐसी औपचारिक व्यवस्थाओं वाले स्कूलों में पढ़ाया था जहाँ अमूमन यह माना जाता था कि सज़ा देने से बच्चों को सिखाने और ज़िम्मेदार व्यक्ति बनाने में मदद मिलती है।
- जिन अभिभावकों के लिए 'भय-रहित' स्कूली माहौल एक नई चीज़ थी, वे इसके बिलकुल ख़िलाफ़ थे।
- जो बच्चे स्कूल जाने की तैयारी के बग़ैर हमारे स्कूल में आ गए थे, उन्होंने शिक्षकों के उन सभी प्रयासों को काफ़ी मुश्किल बना दिया था जिनमें वे झगड़ों को सुलझाने या निर्देशों का पालन करने के लिए बातचीत का रास्ता अपना रहे थे।

हमें अपने विचारों पर अड़े रहने की ज़रूरत थी ताकि हम अपनी मान्यताओं और काम से बदलाव ला सकें।

सीखने का तनाव मुक्त माहौल बनाने के लिए हमने एक ऐसी व्यवस्था बनाई जिसमें बच्चे अपनी इच्छा के मुताबिक़ कक्षा में आ सकें। शुरुआत में, हम जब उन्हें कक्षा में बुलाते तो उनमें से ज़्यादातर बच्चे बाहर ही रहते। वे खेलते रहते, परिसर में घूमते या अकेले बैठे रहते। इसके चलते, हमारे सामने कई नई समस्याएँ उभरकर आईं। कुछ बच्चे अपने गाँव वापस जाने के लिए स्कूल की दीवार फाँदकर उससे लगे खेतों में भाग

निकलते। हमें उनके पीछे भागकर उन्हें वापस लाना पड़ता। हमारे सामने ऐसे मामले भी आए जिनमें कुछ बच्चे आक्रामक हो गए और गालियों का इस्तेमाल करने लगे। जिस धैर्य के साथ और जिस तरह शिक्षकों ने उनके इस तरह के व्यवहार पर प्रतिक्रिया दी वह बच्चों के इस तरह के व्यवहार करने पर घर में होने वाली प्रतिक्रियाओं से बिलकुल उलट थी। इसने बच्चों के बीच सकारात्मक भाव को विकसित करने में एक अहम भूमिका निभाई।

ऐसी किसी भी समस्या के सामने आने पर हमने बच्चों से समूहों में और व्यक्तिगत रूप से नियमित संवाद शुरू किए। हमने उन्हें यह सिखाना शुरू किया कि दूसरों से किस तरह बात करें, और झगड़ों को कैसे सुलझाएँ। ख़ासतौर पर उन्हें गालियों का इस्तेमाल करने से बचना सिखाया गया। छोटे समूहों में लैपटॉप पर फ़िल्में दिखाने जैसी कुछ दूसरी गतिविधियाँ, और रोल प्ले व कहानी सुनाने जैसी कुछ इनडोर गतिविधियाँ करने से हमें विद्यार्थियों के साथ सकारात्मक सम्बन्ध बनाने में मदद मिलने लगी। इससे अब वे कक्षा में ज़्यादा समय बिताने लगे। एक या दो बच्चों को छोड़कर, धीरे-धीरे लगभग सभी बच्चे समय से कक्षा में आने लगे और कक्षा गतिविधियों में शामिल भी होने लगे।

बच्चों को जोड़ना

हमने विभिन्न गतिविधियों के माध्यम से बच्चों को सीखने की प्रक्रिया से जोड़ना शुरू किया, जैसे हाव-भाव के साथ कविताएँ करना; कक्षा की शुरुआत में कहानी सुनाना और ड्रॉइंग, पेंटिंग व मिट्टी से कुछ बनाने जैसी कला गतिविधियाँ करना; और छोटी फ़िल्में या वीडियो दिखाना। इन गतिविधियों में सभी बच्चों को मज़ा आता था। बाहर की गतिविधियों में प्रकृति की सैर शामिल होती थी। इस दौरान बच्चे परिसर के आस-पास घूमते, अवलोकन व चर्चा करते, बागवानी करते, समूह वाले खेल खेलते, और उन खेलों के नियम भी बनाते। इसके अलावा, भाषा और गणितीय अवधारणाओं के लिए बच्चों और शिक्षकों, दोनों के द्वारा मिलकर तैयार किए गए अलग-अलग तरह के डिस्प्ले से भी सीखने में बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करने में मदद मिली।

पाठ्यचर्या से जुड़ी होने के साथ-साथ, इन सभी गतिविधियों ने उनमें मिल-जुलकर खेलने, काम करने और एक-दूसरे को सहयोग व मदद करने जैसे बुनियादी मूल्यों के विकास में भी योगदान दिया। कक्षा और असेम्बली में बातचीत व चर्चाओं के दौरान दिए गए उदाहरणों ने बच्चों को सकारात्मक व्यवहार का महत्त्व समझाने में मदद की। उदाहरण के लिए, सुबह की असेम्बली के एक हिस्से में बच्चों के बैठने की व्यवस्था की गई जहाँ बैठकर वे गतिविधियाँ करते या उनको होते देखते, स्कूल सम्बन्धी मसलों पर चर्चा करते और अपने अनुभव भी साझा करते। इससे वे स्कूल की आगे की दिनचर्या के लिए तैयार होते।

कक्षा व दोपहर के खाने के दौरान, शिक्षक बच्चों के साथ ही बैठा करते; स्कूल परिसर की साफ़-सफ़ाई के लिए सब मिलकर काम करते; और स्कूल की बाक़ी सभी गतिविधियों में सोच-समझकर सबके लिए एक जैसा माहौल रखा गया, ताकि किसी भी तरह की ग़ैर-बराबरी और भेदभाव न हो सके। इस तरह की ज़्यादातर गतिविधियों और कामों ने बच्चों और शिक्षकों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित किए। बच्चे

चित्र-1 : *एक कक्षा में फ़िल्म का प्रदर्शन।*

कक्षाओं में अपने विचार और नज़रिए व्यक्त करने लगे, यहाँ तक कि वे उनके परिवार की समस्याओं जैसी निजी जीवन की बातें भी साझा करने लगे।

कार्यविधियाँ बनाना

धीरे-धीरे, हमने बच्चों के साथ चर्चाएँ करके कक्षा व स्कूल के लिए नियम बनाने शुरू किए। मसलन, बैठने की व्यवस्था, चीज़ों को सफ़ाई के साथ उनकी निर्धारित जगह पर रखना, कचरे के लिए कूड़ेदान का इस्तेमाल करना, शौचालय को साफ़ रखना, अपनी बारी आने पर बोलना, किसी को भी मारना या गाली नहीं देना, खाने को बर्बाद नहीं करना आदि। शुरुआत में, कुछ बुनियादी और आसानी से माने जा सकने वाले नियम ही बनाए गए, और उनको कक्षा के बाहर व भीतर प्रदर्शित किया गया। जब भी कोई झगड़ा या विवाद होता तो बातचीत के दौरान इन नियमों को याद दिलाया जाता।

हम सभी शिक्षकों की नियमित टीम बैठकें हुआ करती थीं। इनमें हमारे अनुभवों, चुनौतियों और उनके सम्भावित समाधानों पर चर्चा की जाती थी। शिक्षा के सन्दर्भ से जुड़ी कई पुस्तकें हम समूहों में पढ़ते और उन पर चर्चा करते। ऐसी कुछ किताबें थीं – गिजुभाई बधेका की *दिवास्वप्न*, तेत्सुको कुरोयानागी की *तोत्तो चान : द लिटिल गर्ल एट द विंडो*, हेमराज भट्ट की *द डायरी ऑफ़ ए स्कूल टीचर*, ए. एस. नील की *समरहिल* आदि। कक्षा में बच्चों की भागीदारी बढ़ाने, कक्षा को बेहतर ढंग से सम्हालने, और एक बाल-केन्द्रित प्रक्रिया स्थापित करने के लिए अच्छे पहलुओं, ख़ासतौर पर शिक्षणविधि सम्बन्धी, को समझने हेतु हमने एक-दूसरे की कक्षाओं का अवलोकन करना और अपनी ख़ुद की कक्षाओं की रिकॉर्डिंग करना शुरू कर दिया। इसके साथ ही, अभिभावकों के साथ नियमित बैठकों की मदद से हम लगातार उनके साथ अपने पढ़ाने के तरीक़े और घर पर बतौर अभिभावक उनकी ज़िम्मेदारियों पर बातचीत करते रहते थे।

ये सभी प्रक्रियाएँ पूरे शैक्षिक वर्ष जारी रहीं, और इन्होंने स्कूल की संस्कृति को गढ़ने में मदद की। जब दूसरे सत्र के बच्चों ने स्कूल में दाख़िला लिया तो हम सभी काफ़ी हैरान थे। शिक्षकों के ज़्यादा प्रयासों के बिना ही बच्चे कक्षा में आकर बैठ रहे थे और सक्रिय रूप से गतिविधियों में शामिल हो रहे थे। इसका श्रेय हमने पुराने सत्र के बच्चों को दिया जिनको देखकर नए बच्चों ने यह सब सीखा। इससे स्कूल में एक भय-रहित संस्कृति के निर्माण की सम्भावना के बारे में हमारी मान्यता व विश्वास और भी मज़बूत हुआ।

'ज़िम्मेदारी के साथ आज़ादी'

बच्चों को ज़िम्मेदार बनाने के लिए, हमने स्कूल के दैनन्दिन के कार्यक्रमों के संचालन के लिए समितियों के गठन जैसी कुछ लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की नींव रखी। स्कूल का प्रत्येक बच्चा इनमें से किसी एक समिति का सदस्य बना और अलग-अलग कामों में शामिल हुआ। ये काम थे – निर्णय लेना, सभी को सूचित रखना, क्रियान्वयन करना, और मनोभावों को सम्हालने जैसे जीवन कौशलों पर काम करने के साथ ही स्कूल महासभा जैसे मंचों के माध्यम से समस्याओं के समाधान ढूँढ़ना। बच्चों को अभिव्यक्ति की जगह देने, कार्यक्रमों को सार्थक ढंग से रचने, और कक्षा के भीतर व बाहर तरह-तरह की गतिविधियाँ आयोजित करने से हमें अपनी स्कूल की सोसाइटी बनाने में काफ़ी मदद मिली।

समरहिल में ए. एस. नील के उदाहरण की ही तरह, विभिन्न स्कूलों के अनुभवों से हमने यह आकलन किया कि उनकी कौन-सी सीखों को किस तरह से हम अपने परिवेश में ढाल सकते हैं। इससे वह बात सामने आई जिसे हम 'ज़िम्मेदारी के साथ आज़ादी' कहते हैं। यानी, बतौर शिक्षक (जिसमें प्राचार्य भी शामिल हैं) हमारी जवाबदेही सिर्फ़ प्रक्रियाएँ स्थापित करने तक ही नहीं है, बल्कि ये प्रक्रियाएँ बच्चों में ज़िम्मेदारी का जो भाव पैदा करेंगी उसके लिए भी हम जवाबदेह हैं। हमने कमेटी की बैठकों में अपने हस्तक्षेपों की समीक्षा की और उन पर चर्चा की। हमने ख़ुद से कुछ सवाल पूछे। जैसे एक शिक्षक के नाते मुझे कब अपनी राय देनी चाहिए? स्कूल के कामकाज के बारे में कमेटी जो निर्णय लेती है वे मेरे सुझावों से कितने प्रभावित होने चाहिए?

चित्र-2 : *कक्षा के बाहर की गतिविधियों का आनन्द लेते हुए विद्यार्थी।*

स्कूल में मिलने वाली देखभाल और भय-रहित माहौल से सभी बच्चे और उनके अभिभावक ख़ुश हैं और स्कूल में बच्चों का नामांकन काफ़ी बढ़ा है। इस संस्कृति को बनाने की यात्रा में, कुछ शिक्षक ऐसे भी रहे जो हमारी विचारधारा से सहमत नहीं थे। ऐसे शिक्षक या तो ख़ुद ही छोड़कर चले गए, या उन्हें छोड़ने के लिए कह दिया गया। इससे स्कूल से जुड़े सभी हितधारकों को अपने साझा लक्ष्य को हासिल करने के लिए मज़बूती से लगे रहने में मदद मिली। हमारे बच्चों की उनके अच्छे व्यवहार और आत्मविश्वास से भरी बॉडी लैंग्वेज के लिए बाहर के लोगों, ख़ासकर दूसरे ज़िलों के सरकारी स्कूलों के शिक्षकों, द्वारा तारीफ़ की जाती है। इस तरह की सराहना और फ़ीडबैक हमें इस दिशा में और आगे बढ़ने के लिए व किसी भी तरह की मौजूदा कमी को समझने और उसे दूर करने के लिए प्रेरित करती है।

चित्र-3 : *कक्षा के बाहर की गतिविधियों ने सीखने में बच्चों की दिलचस्पी को बनाए रखा।*

चित्र-4 : *बच्चों के स्कूल के काम को उनके अभिभावकों के साथ साझा किया जा रहा है।*

चित्र-5 : *बच्चे धीरे-धीरे स्कूल की दिनचर्या के आदी हो गए।*

अनिल एस. अंगडिकि 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन से जुड़े हैं और फ़िलहाल यादगिर, कर्नाटक के अज़ीम प्रेमजी स्कूल में काम कर रहे हैं। फ़ाउंडेशन से जुड़ने से पहले वह कक्षा ग्यारहवीं और बारहवीं को रसायनशास्त्र पढ़ाते थे। उनसे anil.angadiki@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : शिवम **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अतुल अग्रवाल

स्कूल, अभिभावकों और समुदाय के बीच मज़बूत सम्बन्धों की संस्कृति निर्मित करना

अर्धेन्दु शेखर दाश

विद्यार्थियों का समग्र विकास तभी सबसे बेहतर ढंग से होता है जब स्कूल, अभिभावक और समुदाय साथ मिलकर काम करते हैं। स्कूल, समुदाय और अभिभावक, दोनों के साथ सम्बन्धों को मज़बूत करके सीखने के ज़्यादा अवसर प्रदान कर सकते हैं और मूल्यवान संसाधनों के साथ स्थानीय ज्ञान भी हासिल कर सकते हैं। यह देखते हुए कि बच्चे अपने परिवार और समुदाय के साथ महत्त्वपूर्ण समय बिताते हैं, स्कूलों को स्कूली संस्कृति के एक हिस्से के रूप में विद्यार्थियों के विकास के लिए उनके अभिभावकों और समुदाय के साथ नियमित और संरचनागत जुड़ाव की योजना बनाने की ज़रूरत है।

अज़ीम प्रेमजी स्कूल, धमतरी, छत्तीसगढ़ में हम समुदाय को समझने, मज़बूत सम्बन्ध बनाने और अपने विद्यार्थियों के लिए सीखने का एक सहायक माहौल बनाने हेतु अभिभावकों और समुदाय के साथ जुड़ने के लिए आयोजन करते रहते हैं। इन जुड़ावों की योजना बनाते समय, हमने उस मौक़े को लेकर भी सावधानीपूर्वक विचार किया है जब समुदाय के लोग मौजूद हों ताकि उनके साथ होने वाले ये जुड़ाव प्रभावी हो सकें। यहाँ कुछ ऐसी प्रक्रियाओं के बारे में बताया गया है जिन्हें हमारे स्कूल ने सीखने का एक सकारात्मक माहौल बनाने के लिए पिछले कुछ सालों में अपनाया है। मुझे उम्मीद है, इससे दूसरे स्कूलों को भी समुदाय के लोगों के साथ जुड़ने में मदद मिलेगी।

अभिभावकों का उन्मुखीकरण

हर अभिभावक की यह ख़्वाहिश होती है कि उनका बच्चा जिस स्कूल में जाता है वहाँ उसे अच्छी-से-अच्छी शिक्षा मिले। लेकिन ज़्यादातर मामलों में, अभिभावकों को बच्चे की शिक्षा और विकास में अपनी भूमिका के बारे में पता ही नहीं होता। अधिकांश परिवारों में, अभिभावक अपने बच्चों की शिक्षा और प्रगति पर उनके साथ चर्चा ही नहीं करते हैं, इसलिए उनकी पाठ्यचर्या सम्बन्धी अपेक्षाएँ भी स्पष्ट नहीं होतीं। इस चुनौती से निपटने के लिए, हम अभिभावकों के लिए कई आवश्यकता-आधारित उन्मुखीकरण कार्यक्रम आयोजित करते हैं।

- **पाठ्यचर्या सम्बन्धी मदद :** बुनियादी चरण में पढ़ने वाले बच्चों के अभिभावकों के साथ हम विभिन्न कक्षाओं के लिए पाठ्यचर्या सम्बन्धी अपेक्षाओं और शिक्षण के तरीक़े के अलावा इस बात पर भी चर्चा करते हैं कि वे घर पर अपने बच्चे की मदद किस तरह कर सकते हैं। हमने

चित्र-1 : *अभिभावकों के लिए एक कार्यशाला।*

देखा है कि कार्यशाला के बाद अपने बच्चों को शैक्षिक सहायता प्रदान करने वाले अभिभावकों की संख्या में इज़ाफ़ा हुआ है। इसके साथ ही उन्होंने होमवर्क आदि से जुड़े सवालों के लिए शिक्षकों से सम्पर्क किया है।

- **कहानी सुनाना :** अभिभावकों और बच्चों को जोड़ने का सबसे आसान और प्रभावी तरीक़ा कहानी सुनाना है। हम कहानी सुनाने की कार्यशालाएँ आयोजित करते हैं। इन कार्यशालाओं में हम अभिभावकों को दिखाते हैं कि हाव-भाव, आवाज़ के उतार-चढ़ाव, चीज़ों के इस्तेमाल तथा कहानी के आख़िर में सवाल पूछकर इस प्रक्रिया को किस तरह और ज़्यादा प्रभावी बनाया जा सकता है। हम अभिभावकों को कुछ कहानियाँ भी देते हैं और उन्हें अपने बच्चों को ये कहानियाँ सुनाने तथा अपने अनुभव साझा करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। हम उन्हें बताते हैं कि कहानी सुनाने से किस तरह भाषा कौशलों के विकास में मदद मिलती है। कार्यशाला के बाद, अभिभावक घर पर कहानी सुनाने के अपने वीडियो साझा करते हैं और ये वीडियो सकारात्मक परिणाम दर्शाते हैं।
- **अच्छी आदतें :** सभी अभिभावकों के लिए भोजन की आदतों और होमवर्क पर एक उन्मुखीकरण कार्यक्रम है। अच्छे स्वास्थ्य और पोषण के लिए हम अण्डे और दूध के महत्त्व एवं बच्चों की शिक्षा पर इसके प्रभाव को लेकर चर्चा करते हैं। धार्मिक मान्यताओं के बावजूद, अधिकांश अभिभावक आमतौर पर इस बात से सहमत होते हैं कि उनके बच्चे अण्डे खाएँ। हम उनके बच्चे के लिए घर पर पढ़ाई करने और अपना होमवर्क पूरा करने के लिए एक ख़ास समय तय करने की ज़रूरत पर भी उनसे चर्चा करते हैं। कार्यशाला के बाद, कई विद्यार्थी अपना होमवर्क पूरा करने के लिए घर पर कुछ समय देना शुरू कर देते हैं।

अभिभावकों और समुदाय को स्कूली कार्यक्रमों में आमंत्रित करना

स्कूल में आयोजित होने वाले सभी कार्यक्रम स्कूल की संस्कृति, बच्चों की रुचि के क्षेत्रों और स्कूल, अभिभावकों व समुदाय के बीच जुड़ाव को प्रदर्शित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। हमारे स्कूल के सभी कार्यक्रम अभिभावकों और समुदाय की सक्रिय भागीदारी को सुविधाजनक बनाने के लिए डिज़ाइन किए जाते हैं। इन कार्यक्रमों में शामिल होने के लिए हम उन सभी को आमंत्रित करते हैं।

- **वार्षिक खेल दिवस** हमारे स्कूल का एक ऐसा कार्यक्रम है जिसका सबको बेसब्री से इन्तज़ार रहता है। इसमें बच्चे, अभिभावक, समुदाय और शिक्षक साथ मिलकर कई तरह की खेल गतिविधियों में भाग लेते हैं। वे सभी अपनी उम्र और भूमिकाएँ भूलकर दोस्ताना माहौल में एक साथ खेलते हैं और कार्यक्रम का आनन्द लेते हैं। यह आयोजन उनके बीच बेहतर संवाद और सम्बन्ध बनाने में मदद करता है, शिक्षकों और समुदाय के बीच दूरियों को कम करता है, अभिभावकों को शिक्षकों के साथ अपने विचार साझा करने में सहज महसूस कराता है।
- **बाल शोध मेला** स्कूल की सीखने-सिखाने की प्रक्रियाओं को प्रदर्शित करता है और समुदाय को इन प्रक्रियाओं में उसके योगदान के महत्त्व को समझने में मदद करता है।

चित्र-2 : *स्कूल में आयोजित बाल शोध मेले में आए अभिभावक और समुदाय के लोग।*

इस आयोजन में, कई स्कूलों के बच्चे एक या एक से ज़्यादा समस्याओं पर काम करते हैं और मॉडल, चार्ट व चर्चाओं के ज़रिए अपनी समझ को सामने रखते हैं। यह उन्हें समस्या को समझने और उसके सम्भावित समाधानों का पता लगाने के साथ ही उन्हें बड़े दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुत करने में मदद करता है। शिक्षक और समुदाय बच्चों से सवाल पूछते हैं और यह महसूस करते हैं कि सीखना पाठ्यपुस्तकों तक सीमित नहीं होता। इससे स्थानीय ज्ञान की अहमियत, सीखने के वास्तविक जीवन के साथ सम्बन्ध और समस्याओं को हल करने के अलग-अलग तरीक़ों पर ध्यान केन्द्रित होता है। विभिन्न मुद्दों पर बच्चों का आत्मविश्वास देखकर समुदाय के लोग प्रेरित महसूस करते हैं। इस तरह, यह आयोजन शिक्षा को लेकर उनकी समझ को व्यापक बनाता है।

- **राष्ट्रीय त्योहार :** हम स्कूल में सभी राष्ट्रीय त्योहारों में भाग लेने के लिए बच्चों के अभिभावकों और समुदाय के सभी लोगों को आमंत्रित करते हैं। बच्चे अपने अभिभावकों और समुदाय के सामने अपने कौशल का प्रदर्शन करने और प्रस्तुतियाँ देने में उत्साहित महसूस करते हैं, इससे उन्हें प्रोत्साहन मिलता है।
- **अभिभावक-शिक्षक बैठकें :** हर तीन महीनों में, हम एक अभिभावक-शिक्षक बैठक आयोजित करते हैं। इस बैठक में, शिक्षक हर एक विद्यार्थी की सीखने की प्रगति पर उनके अभिभावकों के साथ चर्चा करते हैं। वे अपने कुछ अवलोकन भी साझा करते हैं। वे बताते हैं कि स्कूल और अभिभावक मिलकर बच्चे की शिक्षा एवं विकास में कैसे योगदान दे सकते हैं। शिक्षक, अभिभावकों को विद्यार्थियों की बेहतरी के लिए स्कूल द्वारा किए गए प्रयासों के बारे में भी बताते हैं।
- **स्कूल समुदाय नेटवर्क बैठक :** इन बैठकों में, स्कूल शैक्षिक कार्यों, उपलब्धियों और स्कूल सुधार योजना (SIP) में अपनी समग्र प्रगति के बारे में बताता है। हम समुदाय की अपेक्षाओं पर चर्चा करते हैं। इस मुद्दे पर भी बात करते हैं कि स्कूल और समुदाय सभी बच्चों के फ़ायदे के लिए किस तरह मिलकर काम कर सकते हैं। चूँकि ये लोग अलग-अलग समुदायों के प्रतिनिधि होते हैं, इसलिए वे बच्चों की उपस्थिति, और चिह्नित विद्यार्थियों के सीखने पर बेहतर तरीक़े से ध्यान देने जैसे मुद्दों पर अभिभावकों के साथ बातचीत करते हैं। वे स्कूल के सुचारु संचालन की ज़िम्मेदारी लेते हैं और समुदाय की कुछ अपेक्षाओं को भी साझा करते हैं। मसलन, स्कूल के बाद बच्चों को खेल और संगीत जैसे कौशल सिखाना।

गाँवों में कार्यक्रम आयोजित करना

स्कूल के लिए यह ज़रूरी है कि वह समुदाय तक पहुँचे और उसके साथ गतिविधियाँ और योजनाबद्ध बातचीत करने के लिए कुछ मंच तलाशे। इस तरह के कार्यक्रम सामाजिक मुद्दों के बारे में जागरूकता पैदा करने और विद्यार्थियों को बड़े दर्शक वर्ग के सामने प्रस्तुति देने में आत्मविश्वास पैदा करने के लिए एक मंच उपलब्ध कराने पर केन्द्रित होते हैं। हमारे स्कूल में, विद्यार्थियों और शिक्षकों की कुछ प्रस्तुतियाँ समुदाय में सामाजिक मुद्दों को लेकर जागरूकता पैदा करने के लिए होती हैं।

चित्र-3 : *एक गाँव में विद्यार्थियों द्वारा एक नुक्कड़ नाटक की प्रस्तुति।*

- **विद्यार्थियों और शिक्षकों द्वारा प्रस्तुतियाँ :** हमने स्वच्छ और स्वस्थ समाज एवं स्मार्टफ़ोन के लगातार इस्तेमाल के हानिकारक प्रभावों जैसे सन्देश देने के लिए कई गाँवों में नुक्कड़ नाटक किए हैं। इन प्रस्तुतियों में होने वाले नृत्य और गीत हमारे राज्य की संस्कृति और परम्पराओं को दर्शाते हैं। हम खेलने और चित्र बनाने की गतिविधियाँ भी आयोजित करते हैं। ये गतिविधियाँ सभी आयु वर्ग के लोगों को शामिल होने और आनन्द लेने के लिए प्रोत्साहित करती हैं। हमने देखा है कि कुछ उम्रदराज़ लोग इन गतिविधियों के दौरान अपने बचपन के समय को याद करके भावुक भी हो जाते हैं। इन आयोजनों के माध्यम से, समुदाय स्कूल की संस्कृति को समझता है और इसके साथ जुड़कर ख़ुश होता है।
- **सामुदायिक शिक्षा केन्द्र :** हमारे समुदाय की परिस्थिति को ध्यान में रखते हुए, हमें जो चुनौतियाँ दिखाई दीं उनमें से एक यह थी कि ज़्यादातर विद्यार्थी स्कूल समय के बाद किसी भी शैक्षिक या रचनात्मक गतिविधि में शामिल नहीं होते। हमने समुदाय के कुछ प्रभावशाली लोगों की मदद से गाँव में एक सामुदायिक शिक्षा केन्द्र की स्थापना की जहाँ बच्चों को शाम के समय कुछ रचनात्मक गतिविधियाँ सीखने-करने के लिए एक जगह मिल जाए। समुदाय ने यह केन्द्र शुरू करने की ज़िम्मेदारी ली और हमने कहानी की किताबें और बाक़ी स्टेशनरी उपलब्ध कराई। तीसरी से आठवीं कक्षा के बच्चे हर शाम लगभग डेढ़ घण्टे के लिए केन्द्र में इकट्ठा होते हैं, अपना होमवर्क पूरा करते हैं, कहानियाँ सुनते हैं और कोई-न-कोई सांस्कृतिक कार्यक्रम आयोजित करते हैं। इस तरह की जगह मिलने से बच्चों को अपने साथियों के साथ सीखने में मदद मिलती है और उनके विकास में समुदाय की भूमिका को बढ़ावा मिलता है।
- **गाँवों में ग्रीष्मकालीन शिविर :** हम जानते हैं कि सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में निरन्तरता का होना विद्यार्थियों के लिए महत्त्वपूर्ण है। सिखाने और सीखने की निरन्तरता बनाए रखने और रचनात्मक जुड़ाव हेतु छुट्टियों के समय का इस्तेमाल करने के लिए, हम अलग-अलग गाँवों में ग्रीष्मकालीन शिविरों का आयोजन करते हैं। समुदाय के लोगों के सहयोग से, हमने प्रत्येक गाँव में ऐसी जगहें ढूँढ़ी हैं जहाँ पर पूर्व विद्यार्थियों और शिक्षकों की मदद से हम इन शिविरों का संचालन करते हैं। हम विद्यार्थियों के साथ सुबह के दो घण्टे गणित, भाषा, कला, संगीत और शारीरिक शिक्षा पर काम करते हैं। इन छुट्टियों के दौरान, हम बच्चों को कुछ प्रोजेक्ट सौंपते हैं जो उन्हें पूरे करने होते हैं। समुदाय अपने बच्चों की शिक्षा में सहायता के लिए स्कूल द्वारा किए जा रहे प्रयासों की सराहना करता है।

विद्यार्थियों के घरों का दौरा करना

अपने विद्यार्थियों को जानने के लिए शिक्षकों को समुदाय और विद्यार्थियों की सामाजिक-सांस्कृतिक एवं आर्थिक स्थितियों को समझना ज़रूरी है। यह उन्हें सिखाने की प्रभावी और सुलभ योजनाएँ बनाने में मदद करता है। शिक्षक, विद्यार्थियों के घरों का दौरा करते हैं। घर पर विद्यार्थियों की ज़िम्मेदारियों और स्कूल में उनकी शिक्षा को प्रभावित करने वाले कारकों जैसी चीज़ों को समझने के लिए अभिभावकों तथा परिवार के दूसरे सदस्यों के साथ बातचीत करते हैं। हमारे स्कूल में नियुक्त होने वाले नए शिक्षक भी उस परिवेश की समग्र समझ हासिल करने के लिए उस समुदाय का दौरा करते हैं जहाँ से उनके विद्यार्थी आते हैं। इसके साथ ही, वे समुदाय के लोगों के साथ बातचीत भी करते हैं। इससे अभिभावक, समुदाय और बच्चों के साथ अच्छे सम्बन्ध बनाने के साथ-साथ पाठों की योजना बनाने में भी मदद मिलती है।

नियमित और योजनाबद्ध संवाद के ज़रिए हमने अभिभावकों और समुदाय के साथ मज़बूत सम्बन्ध स्थापित किए। उनके साथ बातचीत को हमने विद्यार्थियों के साथ हमारे नियमित काम का एक हिस्सा बनाया। इससे यह आपसी सम्मान और सहयोग अब हमारी स्कूल संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन चुका है।

अर्धेन्दु शेखर दाश धमतरी, छत्तीसगढ़ स्थित अज़ीम प्रेमजी स्कूल के प्राचार्य हैं। इससे पहले वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में रिसोर्स पर्सन थे। वे गणित में स्नातकोत्तर हैं और गणित से जुड़े मसलों पर शिक्षकों के साथ मिलकर काम करते रहे हैं। वे गणित पढ़ाने में इस्तेमाल होने वाली वैचारिक समझ और शैक्षणिक रणनीतियों पर कार्यशालाएँ आयोजित करते रहते हैं। उन्हें बच्चों के साथ गणित करने में मज़ा आता है। वे तकनीकी संसाधनों की खोज और डिज़ाइन करने में गहरी रुचि रखते हैं। वे छत्तीसगढ़ के लिए मुक्त दूरस्थ अधिगम (Open Distance Learning) के लिए पाठ्यक्रम डिज़ाइन करने और पाठ्यपुस्तकें लिखने की प्रक्रिया में भी शामिल हैं। उनसे arddhendu@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमेय कान्त **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अतुल अग्रवाल

पढ़ने की संस्कृति का निर्माण
एक ग्रामीण स्कूल की सफलता की कहानी

मेलोडी खलखो

पढ़ना, न केवल सीखने के लिए होता है बल्कि आनन्द, मनोरंजन और अच्छा महसूस करने के लिए भी होता है। पढ़ना हमें नए शब्द और कौशल सिखाने में मदद करता है, हमें समालोचनात्मक रूप से सोचने के काबिल बनाता है, हमारे नज़रिए को चुनौती देता है, हमें नए दृष्टिकोण दिखाता है, हमारी कल्पना को ऊर्जा देता है, हमें जिज्ञासु बनाता है और हमें दुनिया की विभिन्न मान्यताओं और संस्कृतियों की खोजबीन करने के लिए प्रेरित करता है।

एकलव्य फ़ाउंडेशन[i] ने मध्य प्रदेश के पिपरिया विकासखण्ड के ग्रामीण इलाकों में स्थित कुछ शासकीय प्राथमिक स्कूलों और मोहल्ला लर्निंग एक्टिविटी सेंटरों (एमएलएसी)[ii] को बाल साहित्य की किताबों के सेट प्रदान किए। पहली से पाँचवीं कक्षा तक के लिए उपयुक्त इन सेटों में अलग-अलग प्रकाशकों जैसे एकलव्य प्रकाशन, प्रथम बुक्स, मुस्कान फ़ाउंडेशन और इकतारा के जुगनू प्रकाशन द्वारा प्रकाशित हिन्दी व अँग्रेज़ी तथा द्विभाषिक कहानियों और कविताओं की चुनिन्दा किताबें शामिल थीं।

एमएलएसी टीम के हिस्से के रूप में हमने मध्य प्रदेश के पिपरिया विकासखण्ड के सिलारी गाँव के शासकीय प्राथमिक स्कूल के विद्यार्थियों एवं शिक्षकों तथा वहाँ के समुदाय के बीच पढ़ने की संस्कृति विकसित करने के लिए पहल की।

विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए बाल मेला

शुरुआत में, एमएलएसी केन्द्र, एक वालंटियर के घर में चलाया जाता था, लेकिन अब यह वहाँ से हटकर शासकीय प्राथमिक स्कूल में आ गया है। हमारे काम के हिस्से के रूप में हमें विद्यार्थियों तथा शिक्षकों को और अधिक किताबें पढ़ने के लिए प्रेरित करना था। पढ़ने में रुचि पैदा करने के लिए पहली चीज़ जो हमने तय की थी वह थी बाल मेले का आयोजन, जिसमें सारी गतिविधियाँ किताबों और पढ़ने के इर्द-गिर्द योजनाबद्ध थीं।

हमने विभिन्न प्रकार की किताबें प्रदर्शित कीं जिनमें, बिग बुक (बड़ी किताबें), लघु कहानियाँ, पिक्चर बुक (सचित्र किताबें) और द्विभाषी किताबें शामिल थीं। विद्यार्थियों और शिक्षकों को इन्हें खुद से ही जानने-समझने के लिए छोड़ दिया गया। इसके साथ ही, हमने किताबों को ध्यान में रखते हुए कई गतिविधियाँ की। जैसे रीड अलाउड (ज़ोर से पढ़ना), अभिनय गीत, कहानी सुनना, किताबों पर बातचीत, कहानी लिखना, चित्र बनाना, अधूरी कहानियाँ पूरी करना, रोल प्ले, पिक्शनरी

चित्र-1 : *कहानी की किताब पढ़ने के बाद एक विद्यार्थी द्वारा बनाया गया चित्र।*

(Pictionary) और ख़ज़ाने की खोज आदि। गतिविधियों के दौरान, विद्यार्थियों और शिक्षकों ने कई सवाल पूछे। सभी बहुत ही उत्साहित लग रहे थे और सभी ने प्रत्येक गतिविधि में सक्रिय रूप से भाग लिया। वैसे भी, ये गतिविधियाँ एमएलएसी में नियमित रूप से आयोजित की जाती हैं।

मेले के बाद मेले में की गई गतिविधियों के सम्बन्ध में हमने शिक्षकों से बातचीत की। प्रत्येक गतिविधि के पीछे विचार क्या था और ये गतिविधियाँ सीखने और पढ़ने के प्रति प्रेम पैदा करने में कैसे मदद करती हैं। हमने अपने विचार साझा किए कि कैसे इन गतिविधियों की योजना बनाई जाती है, कैसे प्रत्येक गतिविधि के लिए उपयुक्त किताबें चुनी जाती हैं, और यह भी कि कैसे ख़ज़ाने की खोज जैसे खेल के लिए सुराग बनाए जाते हैं।

शिक्षक बहुत जिज्ञासु थे और सीखने की चाह भी रखते थे। उन्होंने बताया कि उन्हें स्कूल के लिए किताबें प्राप्त होती हैं लेकिन उन्हें नहीं पता कि उन्हें प्रभावी ढंग से उपयोग कैसे किया जाए। विद्यार्थियों के पास बहुत सारी पाठ्यपुस्तकें और अभ्यास पुस्तिकाएँ हैं, जिनके कारण अन्य किताबें पढ़ने या उनकी खोजबीन करने के लिए समय नहीं मिल पाता है। साथ ही, यह समझ आया कि उनका मुख्य डर था कि अगर विद्यार्थी किताबों का सही ढंग से इस्तेमाल न करें और किताबें क्षतिग्रस्त हो जाएँ तो उन्हें प्रशासन को जवाब देना पड़ेगा। यह आख़िरी बिन्दु ही वह मुख्य कारण था जिसकी वजह से वे किताबें बक्से के बाहर नहीं निकालते थे और बच्चों को उन्हें उपयोग करने नहीं देना चाहते थे।

बच्चों द्वारा किताबों को क्षतिग्रस्त करने के परिणामों का जो डर था, हमें उससे निपटना था। लेकिन यह एक ही बार में सम्भव नहीं था। इसीलिए, हमने शिक्षकों से नियमित बातचीत करना शुरू की कि पढ़ने के फ़ायदे क्या हैं, और ये बच्चों के सीखने में कैसे सहायक होते हैं। स्कूल के दौरों के दौरान हमने शिक्षकों और प्रधान-शिक्षकों के साथ किताबों से जुड़ी और गतिविधियाँ करवाईं और उन्हें किताबों की विभिन्न शैलियों और श्रेणियों से भी परिचित कराया।

इन्हीं प्रयासों का नतीजा है कि अब जब मैं स्कूल जाती हूँ, तो मुझे शिक्षक किताबों की ऐसी गतिविधियाँ कराते नज़र आते हैं जो हमने पहले उनके साथ साझा की थीं। बच्चों द्वारा किताबों को ख़राब कर देने की चिन्ता में भी बदलाव आया है, जो पहले उन्हें बच्चों को किताबें पढ़ने की अनुमति देने से रोकती थी। अभी वे सब बाल साहित्य का आनन्द ले रहे हैं, प्रधान-शिक्षक ने तो बच्चों के लिए कहानियाँ लिखना भी शुरू कर दिया है।

अब विद्यार्थी सक्रिय रूप से किताबों की अधिकांश गतिविधियों का संचालन करते हैं। उन्होंने किताबों को सही-सलामत रखने की ज़िम्मेदारी भी ले रखी है। उन्होंने 'किताबों का अस्पताल' बनाया है जहाँ फटी-पुरानी और क्षतिग्रस्त किताबों की मरम्मत की जा सके। उनके पास एक इश्यु (निर्गम) रजिस्टर है जहाँ वे किताबें देने के पहले सारे विवरण दर्ज करते हैं। उनके द्वारा बनाए गए चित्रों और लिखित रचनाओं को दीवारों पर लगा दिया गया है। बच्चों की शैक्षिक प्रगति, उनके आत्मविश्वास के स्तरों में वृद्धि और उनकी लिखित रचनाओं, विचारों व संवादों में बदले हुए दृष्टिकोण स्पष्ट नज़र आ रहे हैं। इनके अलावा, जब विद्यार्थी किताबें घर ले जाते हैं, तो उनके परिवार के सदस्यों को भी किताबें पढ़ने का मौक़ा मिलता है।

चित्र-2 : *ग्राम पंचायत, सिलारी में सामुदायिक रीडिंग मेला।*

समुदाय के लिए रीडिंग मेला

पढ़ने की संस्कृति को स्कूल से सिलारी गाँव के समुदाय तक विस्तार देने के लिए हमने विद्यार्थियों के माता-पिता को एक बैठक के लिए आमंत्रित किया। बैठक में हमने पढ़ने के महत्त्व पर चर्चा की; और पढ़ने की गतिविधियों की उन दैनिक योजनाओं को जो हम एमएलएसी में करते हैं, उनके उद्देश्यों और उनके परिणामों को साझा किया। इन गतिविधियों के फलस्वरूप बच्चों ने जो सीखें हासिल कीं और उनकी जो प्रगति हुई उसे भी हमने बच्चों के माता-पिता के साथ साझा किया।

जब हमने उनसे किताबों में उनकी रुचि के बारे में पूछा तो उनकी प्रतिक्रियाएँ थीं - (i) हमारी पढ़ने की रुचि है लेकिन किताबों तक पहुँच नहीं है; (ii) हम अनपढ़ लोग हैं, हमारे बच्चों को शिक्षा मिल रही है उतना ही पर्याप्त है; (iii) हम दिहाड़ी मज़दूर हैं, हमारे पास किताब पढ़ने का समय नहीं है या (iv) हमें किताबें पढ़ने का कोई उपयोग नज़र नहीं आता।

हमारे पास इन प्रश्नों के तैयार जवाब नहीं थे। हमने सिलारी गाँव के ग्राम पंचायत कार्यालय में "रीडिंग मेला" करने की योजना बनाई। इसमें बच्चों के माता-पिता सहित समुदाय के अन्य सदस्य जैसे सरपंच और सचिव भी शामिल हुए। हमने ऐसी कई पुस्तक गतिविधियाँ करने की योजनाएँ बनाई थीं जिनमें वे सब आसानी से जुड़ सकते थे। चूँकि इस क्षेत्र में बुन्देलखण्डी भाषा बोली जाती है, हमने रीड अलाउड के लिए मिज़बान चुनी, जो बुन्देलखण्डी लोक कथाओं का एक संग्रह है। एक और मज़ेदार गतिविधि "सहयोगात्मक कला" थी जहाँ सभी को ऐसा कोई चित्र बनाना था जो दूसरों के चित्रों से जुड़ाव रखता हो। हम देख पा रहे थे कि सभी इसका आनन्द ले रहे थे, चर्चाएँ कर रहे थे, सवाल पूछ रहे थे और किताबों की छानबीन कर रहे थे। मेले के अन्त में, हमने सभी से पूछा कि क्या वे किताबें घर ले जाकर पढ़ना चाहते हैं। इसके लिए किसी ने भी इच्छा ज़ाहिर नहीं की।

कुछ महीनों के बाद, बच्चों के माता-पिता के साथ बैठक के दौरान, हमने फिर से वही गतिविधियाँ कीं। इस बार, कुछ माता-पिता खुद से पूछने लगे कि क्या वे किताबें घर ले जा सकते हैं? यह सफलता का वह पल था, जिसका मुझे इन्तज़ार था! वर्तमान में, सिलारी गाँव में, एक छोटा सामुदायिक पुस्तकालय है जिसे वालंटियर संचालित करते हैं। समुदाय के लोग, वहाँ से नियमित रूप से किताबें ले जाते हैं और पढ़ते हैं।

भारी-भरकम पाठ्यक्रम को पूरा करने या बच्चों द्वारा किताबों को क्षतिग्रस्त करने की चिन्ताओं से लेकर पढ़ने की गतिविधियों को समझने और संचालित करने का प्रयास करने तक, शासकीय प्राथमिक स्कूल, सिलारी के शिक्षकों ने एक लम्बा सफर तय किया है। पुस्तकालयों का निर्माण करना, पढ़ने की संस्कृति निर्मित करने का पहला क़दम भर है। पढ़ने में रुचि बनाए रखने के लिए अन्य विभिन्न पहलों के माध्यम से पढ़ने की आदत बनाने के लिए समय और लगातार काम करने की आवश्यकता होती है।

टिप्पणियाँ :

[i]एकलव्य फ़ाउंडेशन भोपाल, मध्य प्रदेश में स्थित एक गैर-लाभकारी, गैर-सरकारी संगठन है जो नवाचारी शैक्षणिक कार्यक्रमों का विकास और फील्ड परीक्षण करता है।

[ii]मध्य प्रदेश के नर्मदापुरम ज़िले के कुछ गाँवों में मोहल्ला लर्निंग एक्टिविटी सेंटर (एमएलएसी) चलाए जाते हैं। इन्हें गाँव के ही वालंटियरों द्वारा स्कूल शुरू होने से पहले दो घण्टे के लिए चलाया जाता है। इसमें शैक्षणिक विषयों के साथ-साथ अन्य व्यावहारिक गतिविधियाँ, मनोरंजक खेल आदि भी आयोजित किए जाते हैं।

मेलोडी खलखो एकलव्य फ़ाउंडेशन में प्रोजेक्ट एसोसिएट के रूप में कार्यरत हैं। वह मध्य प्रदेश के पिपरिया विकासखण्ड में Holistic Initiate Towards Educational Change (HITEC) प्रोजेक्ट में काम करती हैं। उन्होंने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु से एमए किया है। उन्हें विद्यार्थियों और शिक्षकों के साथ बाल साहित्य पढ़ना अच्छा लगता है। उन्हें पेंटिंग करना व लिखना भी पसन्द है और उनकी प्रकृति शिक्षा में गहरी दिलचस्पी है। उनसे melody.xalxo18_mae@apu.edu.in पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : लेखिका ने स्वयं किया है। **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अफसाना पठान

एक स्कूल जहाँ सभी विद्यार्थी सुरक्षित, मूल्यवान और महत्त्वपूर्ण महसूस करते हैं

प्रियंका डी.

गोरावनहल्ली (मद्दुर, कर्नाटक) में स्थित शासकीय उच्चतर प्राथमिक स्कूल (GHPS) के एक भ्रमण के दौरान मैंने देखा कि प्राइमरी कक्षा की एक विद्यार्थी प्रणिता कक्षा में शिक्षिका की भूमिका निभा रही थी। वह अपनी उस शिक्षिका सविता मैम की नक़ल कर रही थी जिसके साथ मैंने कुछ सालों तक नज़दीकी से काम किया था। प्रणिता ने कक्षा में पूछा, "प्रिय विद्यार्थियों क्या आज आप एक नई कहानी सुनने के लिए तैयार हैं? क्या मैं एक कविता से शुरू करूँ या किसी गतिविधि से, आप क्या पसन्द करेंगे?" (उसने हर एक के उत्तर का इन्तज़ार किया)। विद्यार्थियों में से कई उत्तर आए। अनिल ने कहा, "कविता से शुरू करते हैं", प्रीति ने उत्तर दिया, "मैम आपने पिछली बार जो गाना गाया था, क्या उसे सिखा सकती हैं?" बहुत-से दूसरे विद्यार्थियों ने कहा कि वे कोई खेल खेलना चाहते हैं। सभी को सुनने के बाद प्रणिता ने कहा, "आप में से ज़्यादातर लोगों ने जो कहा हम वही करेंगे (ज़्यादातर लोगों ने कहा था कि वे कोई खेल खेलना चाहते हैं)। ठीक है चलो एक खेल खेलें।" फिर एक विद्यार्थी की तरफ़ देखते हुए उसने कहा, "राजेश तुम मेरी बात ध्यान से सुनो, ठीक है मागु (छोटा बच्चा)? क्या तुमने अपने स्कूल मैप प्रोजेक्ट पर काम किया?" राजेश ने उत्तर दिया, "हाँ, लेकिन वह अभी पूरा नहीं हुआ है।" प्रणिता ने उत्तर दिया, "ठीक है कोई दिक्क़त नहीं है, हम उसे शाम को करेंगे।" यह सब इसी तरह तब तक चलता रहा जब तक शिक्षिका आ नहीं गईं। आमतौर पर यह एक सामान्य दृश्य होता है कि विद्यार्थी शिक्षक की अनुपस्थिति में उनकी नक़ल करते हैं – अपनी सत्ता दिखाने के लिए छड़ी ले लेते हैं, शिक्षक की कुर्सी पर बैठ जाते हैं, कड़ी आवाज़ में बोलते हैं और निर्देश देते हैं। लेकिन यहाँ दृश्य अलग था।

इस मामले में पूरी बातचीत में वह विद्यार्थी अपने सहपाठियों को *'मागु'* कहकर बुलाती है, बहुमत के विचारों को आमंत्रित करती है, विनम्र है और उनके प्रयासों की तारीफ़ करती है। वह उन्हीं शब्दों का इस्तेमाल कर रही थी जो आमतौर से उनकी शिक्षिका इस्तेमाल करती थीं और वह अपनी शिक्षिका की तरह ही व्यवहार कर रही थी। उसका विश्वास था कि सहानुभूतिपूर्ण रवैया होना, निष्पक्षता दिखाना, प्यार से बातें करना, यह सब शिक्षक की विशिष्टताएँ होती हैं।

एक रिश्ते का निर्माण

यह स्कूल शाम को साढ़े पाँच बजे तक खुला रहता है। साढ़े चार बजे के बाद शिक्षक और विद्यार्थी स्कूल के मैदान में जमा होते हैं और विभिन्न तरह की गतिविधियों में शामिल होते हैं। वे गाना गाते हैं, खेल खेलते हैं, गाँव में घट रही घटनाओं के बारे में बात करते हैं और साथ मिलकर प्रोजेक्ट वर्क, क्राफ्ट या होमवर्क करते हैं। तीन एकड़ में फैले इस स्कूल परिसर में शाम को टहलना एक सामान्य गतिविधि है। शिक्षक और विद्यार्थी घूमते हुए पेड़-पौधों का अवलोकन करते हैं। यहाँ 100 से अधिक पेड़ हैं, जिनमें नारियल, कटहल, आम, सागौन, इमली, केला, नीम आदि शामिल हैं। विद्यार्थियों ने कुछ हिस्सों में साग-सब्ज़ियाँ भी उगा रखी हैं।

मुझे यह अवसर प्राप्त हुआ कि मैंने कुछ शामें इस स्कूल में बच्चों का अवलोकन करते हुए गुज़ारीं। मैंने शिक्षिका से पूछा कि यह सकारात्मक रिश्ता कैसे बना? उन्होंने उत्तर दिया, "अगर विद्यार्थियों को मौक़ा दिया जाए तो वे बात करते हैं और ख़ुद को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ विद्यार्थी ज़ोर से चिल्लाने, इधर-उधर भागने, सवाल पूछने और मन की किसी भी बात को करने के लिए स्वतंत्र हैं। यहाँ हर शाम अलग होती है और हम नई-नई चीज़ों को करने के लिए तैयार रहते हैं।" वाकई यूँ लगता है कि विद्यार्थी शिक्षिका के साथ सुरक्षित महसूस करते हैं, उन्हें यह भरोसा होता है कि उनकी बात सुनी जाएगी और उन्हें गर्मजोशी का एहसास होता है। वे शिक्षिका के स्कूल से जाने तक स्कूल में रुके रहते हैं। यह रोज़ का व्यवहार बन गया है और माता-पिता यह जानते हैं कि उनके बच्चे स्कूल में सुरक्षित हैं।

जब विद्यार्थी शिक्षिका के पास आपसी लड़ाई-झगड़े के सिलसिले में आते हैं तो वह दोनों तरफ़ की बातें सुनती हैं, कारणों के बारे में पूछती हैं और अपने विचार उनके साथ साझा करते हुए विनम्रता से उनका मार्गदर्शन करती हैं। वह दण्ड देने में विश्वास नहीं करतीं। इसकी बजाय वह, बच्चों ने जो किया है उस पर सोच-विचार करने में उनकी मदद करती हैं। वह कहती हैं, "विद्यार्थी शिक्षिका की वैधता चाहते हैं, इसलिए मैं अपनी भावनाओं को संयमित रखने का पूरा प्रयास करती हूँ और ऐसी कोई बात नहीं करती जो उनके लिए दुखदाई

और चोट पहुँचाने वाली हो।" जब विद्यार्थी उनसे किसी ऐसी चीज़ के बारे में पूछते हैं, जिसके बारे में उन्हें नहीं पता होता तो वह हमेशा बिना हिचकिचाए कहती हैं, "मुझे इसके बारे में नहीं पता, लेकिन कल मैं इसके बारे में पता लगा लूँगी। अगर ऐसा नहीं होता है तो हम सब मिलकर इसका उत्तर तलाशेंगे।" सविता मैम माता-पिता से कहती हैं कि वे नियमित तौर पर अपने बच्चों से पूछें कि वे स्कूल में क्या सीख रहे हैं। उनका मानना है कि इससे विद्यार्थी सीखने के लिए प्रेरित होते हैं।

स्कूल का रूपान्तरण कैसे हुआ?

सविता मैम इस स्कूल में नौ साल पहले आई थीं। तब परिस्थिति ऐसी नहीं थी। विद्यार्थी नियमित स्कूल नहीं आते थे। चूँकि समुदाय का एक बड़ा हिस्सा मुख्यतः कपड़ा फैक्ट्रियों में या दिहाड़ी के रूप में शारीरिक श्रम में लगा रहता है इसलिए वे अपने बच्चों के सीखने पर ध्यान देने में असमर्थ थे। कभी-कभी बच्चे अपने छोटे भाई-बहनों की देख-रेख के लिए घर पर ही रुक जाते थे। सविता मैम विद्यार्थियों के घरों और समुदायों का भ्रमण करती हैं। वह कहती हैं, "विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि के बारे में जानना उनके साथ अच्छा रिश्ता बनाने की कुंजी है। और यह भी कि उनके बारे में जितना अधिक हम जानते हैं, उतना हमारा व्यवहार संवेदनशील होता जाता है।"

स्कूल में सुरक्षा के मुद्दे भी होते थे। स्कूल बन्द होने के बाद समुदाय के अज्ञात लोग और बड़ी उम्र के विद्यार्थी स्कूल के परिसर में घुस जाते थे और स्कूल की सम्पत्ति का दुरुपयोग करते थे। वहाँ वे शराब पीने, जुआ खेलने जैसी गतिविधियाँ करते थे। प्रधान शिक्षक, एसडीएमसी के सदस्यों और शिक्षकों ने मिलकर इस मुद्दे का हल निकालने के प्रयास किए। बच्चों को इस समस्या से अवगत कराया गया और उन्होंने अपने माता-पिता को इस बात के लिए मनाया कि वे स्कूल सम्पत्ति को नुक़सान न पहुँचाएँ और स्कूल को सुरक्षित रखने में मदद करें। समुदाय के सहयोग से अन्ततः ये गतिविधियाँ बन्द हो गईं।

इसके अलावा शिक्षकों और प्रधान शिक्षक ने शिक्षा के महत्त्व के बारे में जागरूकता पैदा करने के लिए सम्मिलित प्रयास किया। बड़े विद्यार्थियों को मदद के लिए साथ लेते हुए उन्होंने नीचे उल्लिखित पहलें कीं :

- राष्ट्रीय त्योहारों को सार्थक तरीक़े से मनाते हुए आयोजित किया गया। इनमें विद्यार्थी अपने माता-पिता, पंचायत सदस्यों और समुदाय के लिए संवैधानिक मूल्यों पर आधारित नाटक प्रदर्शित करते थे।
- माहवारी के दौरान लड़कियों के साथ होने वाली समस्याओं पर समुदाय की महिलाओं के साथ बैठकें की गईं।
- विद्यार्थियों की सीख को छोटी-छोटी प्रदर्शनियों में नियमित रूप से प्रदर्शित किया गया।
- अधिकांश शिक्षकों ने कई सालों तक कोई भी छुट्टी न लेने का प्रयास किया ताकि अपने विद्यार्थियों के सामने एक आदर्श प्रस्तुत कर सकें। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश विद्यार्थियों की उपस्थिति 100 प्रतिशत रहने लगी।
- उन विद्यार्थियों की विशेष देखभाल की गई जिनके माता-पिता शराब पीते थे। उनमें से प्रत्येक से नियमित रूप से बात करते हुए यह समझने की कोशिश की गई कि वे घर में और स्कूल में कैसा महसूस करते हैं।

चित्र-1 : *शिक्षिका के मार्गदर्शन में स्कूल के बाहर विद्यार्थी जोड़ों में सीखते हुए।*

बदलाव के दिखाई देने वाले चिन्ह

- पहले माता-पिता विद्यार्थियों को कक्षा के बीच में ही खिड़की के ज़रिए बुला लेते थे (खिड़कियाँ सड़क की ओर खुलती हैं)। लेकिन अब माता-पिता कक्षा में घुसने से पहले अनुमति लेते हैं और खिड़की से विद्यार्थियों को बुलाना पूरी तरह बन्द हो चुका है।
- माता-पिता, शिक्षक-अभिभावक बैठकों, यानी *'समुदायदाता शाले'* [i] बैठकों में, आयोजनों के दौरान स्कूल भ्रमण करते हैं और बच्चों को स्कूल से लाने ले जाने के लिए नियमित तौर पर स्कूल आते हैं। शिक्षक माता-पिता से संवाद रखते हैं और उनके बच्चों के सीखने के बारे में उन्हें जानकारी देते रहते हैं। इन बैठकों के दौरान सिर्फ़ अकादमिक ही नहीं बल्कि ग़ैर-अकादमिक प्रगति को भी उनसे साझा किया जाता है और उनसे चर्चा की जाती है।
- सभी विद्यार्थी स्कूल की सभी गतिविधियों में बिना भय और हिचक के हिस्सा लेते हैं। कोई भी विद्यार्थी छूटता नहीं है। स्कूल, तालुका और ज़िला स्तर पर होने वाली प्रतियोगिताओं में विद्यार्थियों के भाग लेने से उनके माता-पिता के भीतर स्कूल को लेकर उम्मीद जग गई है। क्लस्टर और तालुका स्तरों पर स्कूल ने लगातार नौ सालों तक *प्रतिभा करंजी* [ii] में शीर्ष ख़िताब जीते हैं।
- विद्यार्थी नेतृत्व की भूमिकाएँ ग्रहण करते हैं और सांस्कृतिक गतिविधियों की योजना बनाते हैं। लगभग सभी विद्यार्थियों ने मंच के कार्यक्रमों में भाग लिया है, जैसे कार्यक्रम का संचालन करना, गतिविधियों की योजना बनाना आदि।
- स्कूल ने एक ऐसी संस्कृति का निर्माण किया है जहाँ बड़े विद्यार्थी अपने से छोटे विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करते हैं।
- सुबह की सभा में नियमित रूप से क्विज़ आयोजित किए जाते हैं और बच्चों द्वारा सीखी गई नई-नई चीज़ें साझा की जाती हैं।
- बच्चे एक-दूसरे का ध्यान रखते हैं, एक-दूसरे के साथ सम्मान से पेश आते हैं और अब गाली-गलौज वाली भाषा का इस्तेमाल नहीं करते।

सविता मैम कहती हैं, "मूल्यों को परस्पर एक-दूसरे से सीखा जाता है। विद्यार्थियों को स्कूलों को उनकी अपनी जगह समझना चाहिए, ऐसी जगह जहाँ उन्हें विकसित होना है, कुछ हासिल करना है और ख़ुश रहना है। स्कूल को बच्चों की मदद इस रूप में करना चाहिए कि बच्चों में आत्मविश्वास विकसित हो और वे ख़ुद को सुरक्षित महसूस कर सकें। हमारे दृष्टिकोण और विद्यार्थियों के साथ सकारात्मक रिश्ते इसमें एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हमें ऐसा प्रयास करना चाहिए कि वे इस बात को जानें कि हमें उनसे काफ़ी उम्मीदें हैं ताकि वे ज़िम्मेदारी महसूस करें और जैसा वे आज कर रहे हैं उससे बेहतर करें। हम उनसे कैसा व्यवहार करते हैं इसके प्रति हमें बहुत सचेत रहने की ज़रूरत है। विद्यार्थियों को यह याद रहता है कि हम उनके साथ कैसे पेश आते हैं। भविष्य में उन्हें अपने जीवन में इस बात को याद करके ख़ुशी होनी चाहिए। हम उन्हें जो सम्मान देते हैं उसके वे हक़दार हैं।"

यह लेख कर्नाटक के माण्ड्या ज़िले के मद्दूर ब्लॉक में 2018-19 में किए गए एक अध्ययन पर आधारित है।

**बच्चों की पहचान सुरक्षित करने के लिए उनके नाम बदल दिए गए हैं।*

***चित्र-2 :** प्रत्येक बच्चे को भागीदारी के लिए प्रोत्साहित किया जाता है और हर एक की बात सुनी जाती है।*

टिप्पणियाँ :

[i]समुदायदाता शाले वह निर्धारित दिन होता है जब शिक्षक, एसडीएमसी सदस्य, माता-पिता और वालंटियर एक साथ बैठकर स्कूल की सुधार-योजना बनाते हैं।

[ii]प्रतिभा करंजी स्कूल के विद्यार्थियों के लिए एक कार्यक्रम है जिसमें क्लस्टर, ब्लॉक, जिला और राज्य स्तरों पर सांस्कृतिक और साहित्यिक प्रतियोगिताएँ आयोजित की जाती हैं।

प्रियंका डी. ने अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय से शिक्षाशास्त्र में स्नातकोत्तर की पढ़ाई पूरी की और 2016 में कैम्पस एसोसिएट के रूप में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन में शामिल हो गईं। वर्तमान में वह कर्नाटक के रामनगर ज़िले में फ़ाउंडेशन के काम का समन्वयन कर रही हैं। वे भाषा संसाधन विकास का हिस्सा रही हैं और उन्होंने *कालिका चेतरिके* और *जादुई पिटारा* (NCF-FS) के लिए योगदान किया है। उन्हें शिक्षकों और बच्चों के साथ काम करने, प्रगतिशील कक्षा शिक्षण की योजना बनाने और उसे दर्शाने तथा भाषा से जुड़ी प्रक्रियाएँ सीखने में आनन्द आता है। उनसे Priyanka.d@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : अमिता शीरीं **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

स्वामित्व और ज़िम्मेदारी का बोध

स्कूल संस्कृति का एक बेहद महत्त्वपूर्ण पहलू

शोभन सिंह नेगी

मुझे कई स्कूलों का अवलोकन करने और उन्हें समझने का अवसर प्राप्त हुआ। इससे मुझे यह समझ में आया कि किसी स्कूल के अच्छे होने व बच्चों के ख़ुश होने तथा उनके अच्छी तरह से सीखने का कारण उस स्कूल के वातावरण या उसकी संस्कृति का 'अलग' होना होता है। इस संस्कृति का सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू स्वामित्व और ज़िम्मेदारी का वह एहसास है जो विद्यार्थियों, शिक्षकों और माता-पिता का उस स्कूल के प्रति होता है। यह लेख ऐसी कुछ ख़ास विशिष्टताओं की चर्चा करता है जो ऐसे स्कूलों में आमतौर से पाई जाती हैं।

अपने विद्यार्थियों को जानना

पहला और सबसे महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि इन स्कूलों के शिक्षक अपने विद्यार्थियों की सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियों के बारे में अच्छी समझ रखते हैं। वे अपने विद्यार्थियों का नाम लेकर पुकारते हैं और ऐसे भयमुक्त वातावरण का निर्माण करते हैं जहाँ विद्यार्थी उनके साथ बहुत सहज तरीक़े से संवाद करते हैं। शिक्षक यह सुनिश्चित करते हैं कि विद्यार्थियों का सामाजिक स्तर स्कूल में उनके व्यक्तित्व के विकास को प्रभावित न करे और न ही उनके सीखने को बाधित करे।

ऐसे स्कूलों में शिक्षक यह भी जानते हैं कि उनके विद्यार्थी अपनी कक्षाओं से कब और क्यों अनुपस्थित रहते हैं। वे सीधे माता-पिता से मिलते हैं और यह मिलना-जुलना बहुत स्वतःस्फूर्त और सहज होता है। शिक्षक उन समस्याओं के प्रति भी जागरूक और संवेदनशील होते हैं जिनका सामना माता-पिता कर रहे होते हैं। ग्रामीण पृष्ठभूमि में यह देखा गया है कि बच्चे फ़सल कटाई और बुआई के मौसम में अपने घर में हाथ बटाते हैं। जब बच्चे अपनी कक्षाओं से अनुपस्थित रहते हैं तब शिक्षक अतिरिक्त समय देकर उन बच्चों की मदद करते हैं।

ऐसे शिक्षक विद्यार्थियों की भाषा/बोली, खानपान की आदतों, जीवन की दशाओं और परिस्थितियों के प्रति अच्छी समझ रखते हैं और उनके प्रति संवेदनशील होते हैं। वे स्थानीय भाषा समझने का प्रयास करते हैं और यह समझने का प्रयास करते हैं कि विद्यार्थी स्थानीय चीज़ों, परिस्थितियों, अभिव्यक्तियों व भावनाओं का किस तरह उल्लेख करते हैं।

सक्रिय रूप से सीखना

दूसरा पहलू जो देखा जा सकता है वह यह है कि इन स्कूलों में बच्चे ख़ुद के सीखने के प्रति ज़िम्मेदारी को स्वीकार करते हैं। उन्हें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के दौरान एक-दूसरे की पुरज़ोर मदद करते हुए देखा जा सकता है। शिक्षक कक्षा में एक ऐसा वातावरण रचते हैं, जहाँ विद्यार्थी एक-दूसरे से सीखते हैं।

मुझे यह भी एहसास हुआ है कि इन स्कूलों के शिक्षक विद्यार्थियों की रुचियों के बारे में गहरी समझ रखते हैं और हर एक की विशिष्टताओं को भी समझते हैं। वे अपनी कक्षाओं के लिए जो पाठ योजनाएँ तैयार करते हैं, वे इसी समझ पर आधारित होती हैं। वे यह भी जानते हैं कि उनके विद्यार्थियों के सीखने के स्तर वास्तव में क्या हैं और इसी आधार पर विद्यार्थियों के समूह बार-बार बनाए जाते हैं।

ऐसे शिक्षक यह सुनिश्चित करने के लिए सक्रिय तरीक़े से काम करते हैं कि बच्चे ख़ुद की ज़िम्मेदारी लेना सीख सकें, ज़िम्मेदार व्यक्ति बन सकें, नेतृत्व के गुण विकसित कर सकें और शारीरिक व मानसिक रूप से मज़बूत हो सकें। यह भी देखा जा सकता है कि इन स्कूलों में विद्यार्थियों का अपने शिक्षकों के साथ बहुत सरल रिश्ता होता है और वे अपने शिक्षकों की संगत पसन्द करते हैं। अकसर उन्हें अपनी नोटबुक/वर्कबुक के साथ शिक्षकों से यह कहते हुए देखा जा सकता है कि वे उन्हें और काम करने को दें।

माता-पिता की अपेक्षाओं को पूरा करना

तीसरा पहलू जो मैंने समझा वह यह है कि ऐसे स्कूलों के शिक्षकों को माता-पिता की अपेक्षाओं की गहरी पकड़ होती है और इन अपेक्षाओं को पूरा करने के लिए वे अपने विद्यार्थियों के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बहुत कठिन परिश्रम और प्रयास करते हैं। वे माता-पिता/ अभिभावकों के साथ नियमित रूप से मासिक और त्रैमासिक बैठक करते हैं और अपनी यह ज़िम्मेदारी समझते हैं कि स्कूल में उनके बच्चे जो सीख रहे हैं उसकी जानकारी उन्हें दी जाए। अकसर, वे उन्हें यह भी बताते हैं कि बच्चे पर किस जगह विशेष ध्यान देने की

ज़रूरत है। ऐसी मौजूदा ज़रूरतों और मुद्दों पर भी चर्चा की जाती है जिसकी चिन्ता माता-पिता को होती है, जैसे उनकी यह इच्छा कि उनके बच्चे अँग्रेज़ी सीखें। स्कूल में माता-पिता का सहयोग विभिन्न तरीक़ों से दिखाई देता है, उदाहरण के लिए, स्कूल भवन के निर्माण और इसके रखरखाव (आस-पास के स्थान को सुन्दर बनाना) में।

संवैधानिक मूल्यों के प्रति जुड़ाव

चौथा पहलू जो मैंने समझा वह यह है कि हमारे गाँव के समाजों में बहुत-सी सामाजिक समस्याएँ भी हैं, जैसे जाति और लिंग का भेदभाव या दूसरे धर्म व आर्थिक रूप से कमज़ोर समुदायों के प्रति पूर्वाग्रह। ऐसे स्कूलों में शिक्षक इस बात को महसूस करते प्रतीत होते हैं कि शैक्षिक संस्थान हमारे संवैधानिक मूल्यों से बँधे हुए हैं और स्कूल का उद्देश्य संवेदनशील और अच्छे (बेहतर) नागरिक विकसित करना तथा ऐसा वातावरण बनाना है जो भेदभाव से मुक्त हो। इसकी अच्छी समझ शिक्षकों के विचारों और उनके व्यवहारों में देखी जा सकती है। अतः, स्कूलों में उनके द्वारा कराए गए सभी कार्य भेदभाव से मुक्त होते हैं। वे इसकी चर्चा बच्चों के माता-पिता से भी करते हैं। शिक्षकों के इन प्रयासों का प्रभाव बच्चों के माता-पिता में सकारात्मक बदलाव और फलतः समाज में सकारात्मक बदलाव के रूप में देखा जा सकता है।

बुनियादी कौशलों पर ध्यान केन्द्रित करना

पहचाना जा सकने वाला पाँचवाँ महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि ऐसे स्कूलों में शिक्षक रटाकर सिखाने की बजाय अपने विद्यार्थियों के बुनियादी कौशलों और अवधारणों की समझ पर केन्द्रित करते हैं। रेखांकित करने वाली बात यह है कि मैंने ऐसे स्कूलों में यह पाया कि ये शिक्षक स्पष्ट रूप से इस बात को समझते हैं कि पढ़ना और लिखना, सोचना-विचारना, कल्पना और तर्क आदि वे कौशल हैं जिससे वह बुनियाद तैयार होती है जिस पर यह शिक्षा टिकी होती है। अतः इन स्कूलों में ऐसे कौशलों के निर्माण पर पर्याप्त ध्यान दिया जाता है।

मैंने यह भी पाया कि इन स्कूलों में बच्चे सीखने के प्रति उत्साहित रहते हैं और पढ़ने-लिखने में उनकी रुचि होती है। बच्चे अपने विचारों को बिना डर और हिचकिचाहट के रखते हैं। शिक्षक इस बात पर ज़ोर देते हैं कि सीखने की ज़िम्मेदारी प्रत्येक विद्यार्थी की ही होती है और शिक्षक इस प्रक्रिया में महज मदद देने के लिए ही होता है। इन कक्षाओं में इन बच्चों को प्रायः यह कहते हुए सुना जा सकता है कि, "सर/ मैडम, हम अब आगे क्या पढ़ें? हम क्या लिखें? क्या हम अगला पाठ पढ़ें?" आदि। मैंने यह कभी नहीं सुना कि शिक्षकों ने कहा हो कि वे पढ़ाने से थक गए हैं। मैंने यह भी देखा है कि जब इन स्कूलों में छुट्टी होती है तब विद्यार्थी घर जाने की जल्दी में नहीं होते।

विद्यार्थियों का स्वामित्व बोध

पिछली बात मुझे छठवें पहलू पर ले आई है जो यह है कि बच्चों की इन स्कूलों के संचालन में महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। स्कूल की व्यवस्था, रोज़ाना की प्रार्थना-सभा, खेल, स्कूल में होने वाले विभिन्न कार्यक्रमों और राष्ट्रीय त्योहारों/उत्सवों के आयोजन में विद्यार्थियों की भागीदारी महत्त्वपूर्ण है। यहाँ बच्चों में स्कूल के प्रति एक अपनेपन का बोध होता है और इसी कारण इन स्कूलों में भवन साफ़-सुथरे, व्यवस्थित और सुरक्षित नज़र आते हैं। मैं प्रायः कई शिक्षकों को यह कहते हुए पाता हूँ कि गाँव के कुछ असामाजिक तत्व स्कूल बन्द होने के बाद स्कूल परिसर का दुरुपयोग करते हैं। लेकिन इन स्कूलों में विद्यार्थी और उनके माता-पिता इस पर तीखी नज़र रखते हैं और स्कूली भवनों को साफ़ और सुरक्षित रखने में अपनी ज़िम्मेदारी को समझते हैं। विद्यार्थी और उनके अभिभावक यह महसूस करते हैं कि स्कूल वह सम्पत्ति है जो उनके गाँव के समुदाय के हिस्से के तौर पर उनकी है और उसे सुरक्षित रखने की ज़िम्मेदारी उन्हीं की है।

स्कूल प्रमुख का नेतृत्व

सातवाँ पहलू है ऐसे स्कूलों में स्कूल प्रमुख की भूमिका और उनका सक्षम नेतृत्व। स्कूल प्रमुख शिक्षा के उद्देश्य और लक्ष्य के बारे में एकदम स्पष्ट होते हैं। वे मानते हैं कि उनकी ज़िम्मेदारी बच्चों को विभिन्न विषय पढ़ाना भर नहीं है, बल्कि अच्छे नागरिक और एक बेहतर समाज बनाना भी उनका काम है। बच्चों के साथ उनके संवाद बहुत सहज और स्वतः स्फूर्त होते हैं। वे बच्चों से बहुत प्यार से पेश आते हैं और उन्हें समय-समय पर सलाह देते रहते हैं।

वे ख़ुद को स्कूल के लिए एक आदर्श के रूप में प्रस्तुत करते हैं और शिक्षकों के साथ दोस्ताना लेकिन पेशेवर रिश्ता बनाते हैं। वे इस बात को ध्यान में रखते हैं कि उन्हें शिक्षकों को ज़रूरी सुविधाएँ मुहैया करानी हैं ताकि शिक्षक अपने शिक्षण कार्यों को ख़ुशी-ख़ुशी पूरा कर सकें। वे शिक्षकों के सामने शिक्षण के दौरान आने वाली समस्याओं के प्रति सचेत रहते हैं और अगर ज़रूरत होती है तो वे इन्हें हल करने के लिए सम्बन्धित विभागों और संस्थाओं की सहायता भी लेते हैं।

ये स्कूल प्रमुख नियमित रूप से स्कूल का निरीक्षण भी करते हैं ताकि वे बच्चों के सीखने के स्तर से अवगत रहें। वे विद्यार्थियों को स्कूल, ब्लॉक व ज़िला स्तरों पर विभिन्न खेलों और सांस्कृतिक प्रतियोगिताओं में भागीदारी करने और अच्छा प्रदर्शन करने के अवसर प्रदान करते हैं। यह स्पष्ट है कि जब

स्कूलों का प्रदर्शन अच्छा होता है तब अभिभावक भी स्कूल के साथ एक सहज जुड़ाव महसूस करते हैं और वे स्कूल की हर सम्भव मदद करने के लिए उत्सुक रहते हैं।

इन स्कूलों में विभिन्न स्थलों के कार्यान्वयन पर उचित ध्यान दिया जाता है, जैसे स्कूल की सभा, बच्चों का पुस्तकालय, बच्चों के भोजन व बैठने की व्यवस्था और खेलों के लिए उपकरण। इसके साथ ही परिसर को साफ़ रखने और उसे सुन्दर बनाने पर भी ध्यान दिया जाता है।

शिक्षकों में टीम भावना

अन्तिम चीज़ जो मुझे समझ में आती है वह यह है कि इन स्कूलों में शिक्षक एक टीम के रूप में साथ काम करते हैं। एक विषय पढ़ाने में एक शिक्षक अपना व्यक्तिगत प्रयास कर सकता है, लेकिन जब पूरा स्कूल एक ज़िम्मेदार संगठन के तौर पर साथ काम करता है तब स्थितियाँ काफ़ी बेहतर हो जाती हैं। जब शिक्षक स्कूल के प्रति ज़िम्मेदारी और अपनेपन का भाव रखते हैं तब वे विद्यार्थियों के चौतरफ़ा विकास की दिशा में काम करते हैं; और वे अपने दिमाग़ में शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को ध्यान में रखकर काम करते हैं। इस कारण से इन स्कूलों में विद्यार्थियों को सीखते हुए देखा जा सकता है। वे बहुत उत्सुकता के साथ स्कूलों की सभी गतिविधियों में भी भाग लेते हैं। विद्यार्थी विभिन्न प्रतियोगी परीक्षाओं में अच्छा प्रदर्शन करते हैं और उनके अन्दर अपने स्कूल के प्रति अपनेपन की एक गहरी भावना होती है। इन स्कूलों में शिक्षा विभाग के अधिकारियों का सहयोग भी स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है।

शोभन सिंह नेगी उत्तराखण्ड राज्य में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन द्वारा किए जाने वाले कार्य के प्रमुख हैं। वह 2010 से फ़ाउंडेशन के साथ हैं। उत्तराखण्ड से पहले उन्होंने आठ साल बाड़मेर, राजस्थान में काम किया था। उनसे shobhan@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : मनीष आज़ाद **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अनुज उपाध्याय

कोई भी रीति हमेशा ही कुछ बुनियादी मूल्यों से निकलती है। उदाहरण के लिए, जब कोई स्कूल सुबह की सभा में कोई धर्मनिरपेक्ष प्रार्थना शामिल करने का निर्णय लेता है, तो वह दर्शाता है कि वह धर्मनिरपेक्षता और समावेश को महत्त्व देता है। अगर कुछ स्कूल सुबह की सभा में प्रार्थनाओं की जगह राष्ट्र के प्रति संकल्प को शामिल करते हैं, तो वे यह दर्शा रहे होते हैं कि वे देशभक्ति को किसी भी धार्मिक सम्बद्धता पर तरजीह देते हैं।

- स्कूल संस्कृति की प्रकृति और उद्देश्य, प्रकाश अय्यर, पेज 7

सहयोगी और समर्थकारी माहौल बनाना | गाँव के एकल शिक्षक वाले स्कूल से मिली सीखें

स्वाति भण्डारी

स्कूल बच्चों के लिए एक दूसरा घर होता है क्योंकि वे अपना अधिकांश समय वहाँ बिताते हैं, और वह शिक्षिका ही होती हैं जो बच्चों को प्यार, सुरक्षा और उनका स्वागत किए जाने का अहसास कराती हैं। यह एक सार्वभौमिक सत्य है कि जब हम महसूस करते हैं कि हमें प्यार किया जा रहा है तब हम ज़्यादा अच्छा प्रदर्शन करते हैं, और जब हम सुरक्षित महसूस करते हैं, हमारे अन्दर आत्मविश्वास आता है। सभी बच्चों के लिए स्कूल को एक ख़ुशनुमा जगह बनाना उस शिक्षक के लिए आसान नहीं होता जिसके पास काम का दबाव बहुत ज़्यादा होता है। एकल शिक्षक वाले किसी स्कूल में यह और भी ज़्यादा कठिन हो जाता है जहाँ शिक्षक को प्रत्येक विद्यार्थी के सीखने के साथ-ही-साथ उसकी बेहतरी पर भी ध्यान केन्द्रित करना होता है और अकेले ही सारे प्रशासनिक काम भी निपटाने होते हैं।

मैं ऐसे ही एक शिक्षक प्रभु राम से मिली जो राजस्थान के राजसमन्द ज़िले के ऐतिहासिक कुम्भलगढ़ ग्रामीण ब्लॉक में स्थित लाडला की भागल शासकीय प्राथमिक स्कूल में पढ़ाते हैं। स्कूल का दौरा करने वाला कोई भी व्यक्ति विद्यार्थियों की शिक्षा पर पड़े प्रभु राम के प्रभाव को साफ़तौर पर देख सकता है। मैं पहली बार इन शिक्षक से तब मिली जब महामारी के दौरान मैंने इस स्कूल का दौरा किया था। उस वक़्त जिस पहली चीज़ ने मेरा ध्यान खींचा वह थी, सीखने-सिखाने की महत्त्वपूर्ण सामग्री (TLM)। इस सामग्री को उन्होंने बहुत मेहनत से तैयार किया था। विद्यार्थियों के सीखने के स्तरों पर आधारित जीवन्त और ख़ुशनुमा माहौल बनाने से बच्चों को सीखने की गतिविधियों में बेहतर तरीक़े से शामिल करना आसान हो जाता है।

एक टीएलएम सबसे अलग दिखाई दे रहा था। वह था, एक टीवी सेट जिसे शिक्षक ने थर्मोकोल की शीटों से बनाया था। इस फ़्रेम के अन्दर, दिखाई जाने वाली सामग्री मुद्रित कहानियाँ और स्लाइडें थीं जिन्हें हाथ से दाएँ-बाएँ घुमाया जा सकता था। यह 'टीवी स्क्रीन' कहानियों की किताबों के बड़े, रंगीन पन्नों को दिखाती थी और विद्यार्थी 'चैनल बदलकर' दूसरी

चित्र-1 : *शिक्षक द्वारा बनाया गया 'टीवी सेट'।*

कहानियाँ 'देख' सकते थे। शिक्षक अपने हाथ से स्क्रीन पर कहानी को दिखाते, और जैसे-जैसे कहानी आगे बढ़ती, वह रुककर सवाल पूछते और विद्यार्थियों से अनुमान लगाने को कहते कि आगे क्या हो सकता है। कहानी ख़त्म होने के बाद विद्यार्थी छोटे-छोटे समूहों में बँट जाते थे और अपने पसन्दीदा दृश्यों के चित्र बनाते या संक्षेप में आगे की कहानी लिखते। हाथ से बनाए इस टीएलएम के माध्यम से कृत्रिम रूप से टेलीविज़न देखने के अनुभव को तैयार करके शिक्षक ने सीखने का एक गतिशील और संवादात्मक माहौल तैयार किया। इससे पढ़ना और सीखना, दोनों ख़ुशनुमा और शिक्षाप्रद हो गए।

बच्चों के मूल्यांकन अध्ययन के लिए जब मैं दूसरी बार स्कूल गई, मुझे उनके साथ ज़्यादा समय बिताने का मौक़ा मिला। मैं उनके सीखने के और आत्मविश्वास के असाधारण स्तरों को देखकर दंग रह गई। बहुत-से स्कूल जिनका मैं दौरा करती हूँ, उनमें यह पाती हूँ कि विद्यार्थी अनौपचारिक बातचीत में तो आत्मविश्वास से भरे दिखाई देते हैं, लेकिन जब मैं उनके सीखने के स्तरों का मूल्यांकन करने के लिए सवाल पूछती हूँ, उनके चेहरे पर घबराहट दिखाई देने लगती है। लेकिन इस स्कूल के विद्यार्थियों ने मुक्त भाव से मेरे सवालों का जवाब दिया, जबकि मैं उनके साथ पहली बार संवाद कर रही थी। ऐसा लगता था कि यह स्कूल उनके लिए एक ख़ुशनुमा जगह है। यह जानने के लिए कि यह जगह ऐसी क्यों बनी, मैंने एक पूरा दिन स्कूल में बिताने का निर्णय लिया।

प्रोत्साहन और सहयोग

स्कूल में केवल दो ही कक्ष हैं। इसलिए एक कक्ष में कक्षा-1 व 2 के विद्यार्थी साथ बैठते हैं और कक्षा-3, 4 व 5 के विद्यार्थी दूसरे कक्ष में एक साथ बैठते हैं। विद्यार्थियों के संज्ञानात्मक और अकादमिक विकास को ध्यान में रखते हुए यह व्यवस्था सावधानी से बनाई गई है। सभी छोटे बच्चों को एक कमरे में रखने से शिक्षक को यह सहूलियत होती है कि वह उनकी व्यक्तिगत ज़रूरतों और सीखने की शैलियों को बेहतर तरीक़े से समझ सकते हैं और उनके अनुसार सिखा सकते हैं।

इसके अलावा, इस व्यवस्था के कारण शिक्षक के कक्षा में नहीं होने की सूरत में बच्चों द्वारा सहपाठियों का सहयोग करने की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। ऐसे वक़्त में, अकसर कक्षा-2 के विद्यार्थी आगे आकर शिक्षक द्वारा दिए गए निर्देशों के आधार पर कक्षा-1 के विद्यार्थियों का सहयोग करते हैं। मैंने देखा है कि वे प्रभावी तरीक़े से सहयोग करते हैं और आपसी मदद प्रदान करते हैं।

अनामांकित बच्चे (जो नामांकित विद्यार्थियों के साथ ही आते हैं) भी कक्षा-1 और 2 के साथ बैठते हैं और उन्हीं के साथ सीखना शुरू करते हैं। एक वाक़िया है। अक्षर पहचानने के

चित्र-2 : *शिक्षक द्वारा बनाई गई प्रिंट रिच सामग्री से सजी कक्षा।*

एक पाठ के दौरान शिक्षक ने ब्लैकबोर्ड पर सभी अक्षरों को लिख दिया। इसके बाद वह एक अक्षर का नाम पुकारते, और साथ ही एक विद्यार्थी का नाम पुकार कर उसे ब्लैकबोर्ड के पास आने को कहते। वह उस बच्चे से कहते कि उस अक्षर को पहचान कर उसके ऊपर गोला बनाए। कुछ समय बाद, एक अनामांकित बच्चा भी शिक्षक के पास गया और वैसा ही करने के लिए उनसे चाक माँगी ताकि वह भी इस गतिविधि का हिस्सा बन सके। शिक्षक ने उसे चाक का एक टुकड़ा दिया और उस बच्चे ने ब्लैकबोर्ड के पास जाकर एक अक्षर पर गोला लगा दिया। शिक्षक ने पूरी कक्षा से उसके लिए ताली बजाने को कहा। बाद में, जब मैंने शिक्षक से इस बारे में चर्चा की तो उन्होंने बताया कि यह बच्चे के लिए सीखने का पहला क़दम है और दूसरों के लिए इससे समावेशी भागीदारी को प्रोत्साहन मिलता है।

प्रभु राम का पढ़ाने का यह रुख़ बाल-केन्द्रित है, और वह इसमें पाठ्यपुस्तकों के अलावा दूसरे संसाधनों को भी शामिल करते हैं। इनमें से कुछ को उन्होंने ख़ुद ही बनाकर कक्षा की दीवारों पर प्रदर्शित किया है। कक्षाएँ उन प्रिंट रिच सामग्रियों से भरी पड़ी हैं जिन्हें प्रभु राम ने अपने ख़ाली समय में बनाया है।

उनके शिक्षण के सबसे अच्छे पहलुओं में से एक यह था कि वे उपलब्ध संसाधनों का बहुत अच्छा इस्तेमाल करते थे। दीवार पर दर्शाए गए भारत और राजस्थान के मानचित्रों पर चर्चा करते हुए, शिक्षक ने विद्यार्थियों को दिखाया कि मानचित्रों को

कैसे पढ़ा जाता है। उसके बाद, प्रत्येक विद्यार्थी से यह कहा गया कि उन्होंने जो सीखा है उसे सबके साथ साझा करें। इस दौरान शिक्षक उनसे सम्बन्धित सवाल पूछकर उन्हें प्रेरित करते रहे। यदि कोई विद्यार्थी भ्रमित होता, शिक्षक अपने सवालों को थोड़ा बदलकर उसकी मदद करते थे। भाषा पढ़ाते समय वह अख़बार और ग्लोब जैसे कई दूसरे संसाधनों का प्रयोग करते थे।

प्रभु राम प्रत्येक बच्चे पर बराबर ध्यान देते हैं। वे यह सुनिश्चित करते हैं कि सभी बच्चों को समान अवसर मिलें। उदाहरण के लिए, कक्षा-5 के बच्चों को देश के त्योहारों का अध्याय पढ़ाते समय उन्होंने पाठ में बताए हुए त्योहारों को मनाने के बारे में उनके अनुभवों को सुना और उन्हें चर्चा करने का मौक़ा दिया। कक्षा-3, 4 व 5 के सभी विद्यार्थियों ने चर्चा में भागीदारी की। बाद में, शिक्षक ने उन सभी को अपने सम्बन्धित ग्रेड के आधार पर सवालों के जवाब लिखने के लिए प्रोत्साहित किया।

वहाँ मुझे एक भी ऐसा विद्यार्थी नहीं मिला जो कक्षा की इन गतिविधियों में भाग न ले रहा हो। उनकी कक्षा का प्रत्येक विद्यार्थी ख़ुश और आत्मविश्वास से लबरेज़ था। बच्चे जवाब देते थे और जब उन्हें कुछ समझ नहीं आता था, वे बिना किसी हिचकिचाहट के सवाल पूछते थे। अगर वे चर्चा के दौरान कुछ कहना चाहते तो अपना हाथ उठाते, अपनी बारी का इन्तज़ार करते, और अपने कामों में लगे रहते। एक से अधिक ग्रेड के साथ बैठने के बावजूद विद्यार्थी कक्षा का शिष्टाचार बनाए रखते।

स्वामित्व और ज़िम्मेदारी

यहाँ शिक्षक सीखने का एक ऐसा सकारात्मक माहौल तैयार कर रहे हैं जहाँ बच्चे रोज़ाना की गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग लेकर स्कूल के साथ अपनेपन की एक मज़बूत भावना महसूस करते हैं। इन गतिविधियों में, स्कूल में इकट्ठा होना और कक्षा की सामग्री की देखभाल की ज़िम्मेदारी निभाना शामिल हैं। यह रुख़ विद्यार्थियों को समर्थ बनाता है, और उनके सीखने की जगह के लिए उनमें एक दायित्वबोध भरता है।

कक्षा के संसाधनों, जैसे खिलौनों, पुस्तकों और शैक्षिक सामग्रियों को सम्हालने और व्यवस्थित करने में बच्चों की भागीदारी को सुनिश्चित करते हुए, शिक्षक उनमें स्वामित्व की संस्कृति का भाव पैदा कर रहे हैं। यह न केवल उन्हें आवश्यक जीवन कौशल सिखाता है बल्कि स्कूल समुदाय के साथ उनके रिश्ते को पोषित भी करता है।

भोजनावकाश के दौरान, बच्चों को खेलने की सामग्री का ज़िम्मेदारीपूर्वक उपयोग करते हुए और बाद में उसे सही तरीक़े से व्यवस्थित करते हुए देखना, साझे संसाधनों को सम्मान देने के महत्त्व के बारे में उनकी समझ को और सीखने का एक साफ़-सुथरा माहौल बनाए रखने के प्रति उनकी प्रतिबद्धता को दर्शाता है।

कुल मिलाकर कहें तो, इन समावेशी व्यवहारों के ज़रिए शिक्षक एक ऐसा सहयोगी और समर्थकारी स्कूली माहौल बना रहे हैं जहाँ बच्चे ख़ुद को महत्त्वपूर्ण, सम्मानित और अपने सीखने के अनुभवों में तत्परता से शामिल महसूस करते हैं। शिक्षक इन बच्चों को ऐसे ज़रूरी कौशलों और आत्मविश्वास के साथ समर्थ बना रहे हैं जो ज़िन्दगी भर इनके व्यक्तित्व का हिस्सा बने रहेंगे और इस स्कूल की बुनियादी संस्कृति का निर्माण करेंगे।

स्वाति भण्डारी सीहोर, मध्यप्रदेश के ज़िला संस्थान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन की फ़ील्ड रिसर्च टीम का हिस्सा हैं। वे 2017 में एक फेलो के रूप में फ़ाउंडेशन से जुड़ीं। स्वाति को घूमना और नई जगहों व विभिन्न संस्कृतियों की खोज करना बेहद पसन्द है। उनसे swati.bhandari@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : मनीष आज़ाद **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** अतुल अग्रवाल

बच्चे सामाजिक और व्यवहार-सम्बन्धी आदतों को कैसे आत्मसात करते हैं

उमाशंकर पेरिओडी

मैंने 1980 में बच्चों के साथ कार्यशालाएँ करना शुरू किया। अपनी पहली स्वतंत्र कार्यशाला मैंने मंगलौर के अट्टावर नामक अर्ध-शहरी झुग्गी-बस्ती वाले क्षेत्र में की थी। तब मैं वहीं रहता था। यह एक ग्रीष्मकालीन शिविर था जिसका मुख्य विषय रचनात्मकता थी। इसमें बच्चों के लिए ललित कलाओं और थिएटर पर कार्यशाला आयोजित की गई थी। इस कार्यशाला से मैंने कई बातें सीखीं। इसके बाद मैंने अपने गाँव में बच्चों के लिए कई कार्यशालाएँ आयोजित कीं। इस तरह की कार्यशालाएँ आज भी आयोजित की जा रही हैं। अब इन्हें हमारे द्वारा प्रशिक्षित बच्चे और मेरी बेटियाँ संचालित करती हैं।

इन कार्यशालाओं में विषयों पर ध्यान केन्द्रित करने के अलावा हमने कुछ सामाजिक और व्यवहार-सम्बन्धी आदतों पर भी सचेत रूप से ज़ोर दिया है। इन आदतों को बच्चे धीरे-धीरे आत्मसात कर लेते हैं और इन्हें अमल में लाते हैं। समय के साथ ये आदतें इन कार्यशालाओं की संस्कृति का हिस्सा बन गई हैं और बच्चों ने इन्हें अपने दैनिक जीवन के व्यवहारों में अपना लिया है।

ज़िम्मेदारी और सहभागिता

इन कार्यशालाओं में हमने जिस एक बात को शुरुआत से ही अपनाया है, वह है अपनी योजना का विवरण बच्चों के साथ साझा करना और उस पर चर्चा करना। जब हम अपनी योजना साझा करते हैं, तो उनसे उनकी राय भी पूछते हैं। शुरू-शुरू में बच्चे बोलने में संकोच करते हैं। बच्चे तभी बोलते हैं जब उन्हें लगता है कि उनकी बातों को गम्भीरता से लिया जाएगा। इसके अलावा, वयस्क भी बच्चों की राय पूछने से डरते हैं क्योंकि कई बार उन्हें नहीं पता होता कि उनकी राय का करना क्या है। उदाहरण के लिए, कुछ ऐसे अवसर आए जब हमने कार्यशाला की योजना बच्चों के साथ साझा की और उन्होंने गतिविधियों के क्रम में बदलाव का सुझाव दिया। बतौर आयोजक हमने एक ख़ास तरीक़े से योजना बनाई होती है, इसलिए जब कोई बच्चा बदलाव का सुझाव देता है तो हमारी स्वाभाविक प्रतिक्रिया उसे न कहने या ख़ारिज करने की होती है। ऐसी स्थिति में वयस्क बच्चों से यह पूछ सकते हैं कि वे बदलाव क्यों चाहते हैं। कभी-कभी बच्चे कुछ अद्भुत सुझाव दे सकते हैं। वयस्कों को स्वयं को स्थिति के अनुरूप ढालने और योजनाओं को बदलने के लिए तैयार रहना चाहिए। हमने देखा कि जब हमने उनके सुझावों को स्वीकार कर लिया, तो बच्चों में तुरन्त ही कार्यशाला को लेकर ज़िम्मेदारी का भाव पैदा हो गया। वे इसे अपनी कार्यशाला मानने लगे। ऐसे में कार्यशाला का संचालन करना भी आसान हो जाता है क्योंकि बच्चे उसमें पूरे दिल से भाग लेते हैं।

पिछले कुछ सालों से हम सुबह-शाम बच्चों के साथ बैठकर चर्चा करते रहे हैं। अब चर्चा इन कार्यशालाओं का एक स्वाभाविक हिस्सा बन गई है। बच्चों को यह यक़ीन हो गया है कि हम उनकी बात सुनेंगे और उनके सुझावों पर अमल करेंगे। सब जानते हैं कि चर्चाएँ होंगी और उन्हें इसमें भाग लेना है। यह हमारी कार्यशालाओं की संस्कृति का एक हिस्सा बन गई है।

अनुशासन

एक और मुश्किल पहलू है अनुशासन। इस पर भी हमने बच्चों के साथ काम किया है। इसे भी लगातार और बार-बार करना होता है। इसलिए किसी भी कार्यशाला की शुरुआत में ही हम सब एक साथ बैठते हैं और कुछ व्यवहार-सम्बन्धी मानदण्ड तय करते हैं। इन मानदण्डों का पालन करने के लिए सभी की सहमति होती है। यह हमारा नियम है कि खुली चर्चा होगी, लेकिन एक बार जब व्यवहार के मानदण्डों पर सहमति बन जाए, तो हम सभी को उनका पालन करना होगा। और अगर किसी बदलाव की ज़रूरत हो, तो वह भी सभी के साथ एक और चर्चा के बाद ही किया जाएगा। किसी भी एक व्यक्ति को समूह द्वारा लिए गए निर्णय को बदलने का अधिकार नहीं है। इसे केवल समूह ही बदल सकता है। हमने बहुत आसान और की जा सकने वाली चीज़ों से शुरुआत की, जैसे कि कमरे के बाहर जूते-चप्पल सीधी लाइन में रखना। अब यह हमारे सभी बच्चों की आदत बन गई है। अगर कोई अपने जूते-चप्पल कहीं और छोड़ भी दे, तो कोई-न-कोई बच्चा उसे उठाकर तयशुदा स्थान पर रख देता है।

इसी तरह हमने तय किया कि अपनी जगह को साफ़ करने का काम भी हम सभी बारी-बारी से करेंगे। कार्यशाला की जगह को हर कार्यशाला के पहले व बाद में साफ़ किया जाता है।

इसमें यह सोच गहराई से समाई हुई है कि 'कोई भी जगह हमें जैसी मिली, हमें उसे उससे बेहतर बनाकर छोड़ना चाहिए।' जगह की सफ़ाई का यह काम लड़के और लड़कियाँ दोनों ही बराबरी से करते हैं। सुगमकर्ता भी सफ़ाई का काम करते हैं। वे सिर्फ़ इसका निरीक्षण नहीं करते। इससे सभी बच्चों को इस काम को करने की प्रेरणा मिली है।

संसाधनों का सावधानीपूर्वक इस्तेमाल

संसाधनों की बर्बादी न करना और उनका समझदारी से उपयोग करना भी सोच-समझकर लिया गया एक निर्णय है। हम बच्चों को यह बात लगातार याद दिलाते रहते हैं, ख़ासकर जब हम ऐसी चीज़ें बाँटते हैं जिन्हें ख़रीदा जाता है, जैसे कि रंग, क्राफ्ट पेपर, कैंची आदि। जब बच्चे सामग्री इधर-उधर फेंक देते हैं, तो हम इस ओर उनका ध्यान आकर्षित करते हैं और उनके साथ मिलकर इसे इकट्ठा करते हैं ताकि इसे बाद में फिर से इस्तेमाल किया जा सके। इस तरह हम उन्हें दिखाते हैं कि हमें संसाधनों की क़द्र करनी चाहिए और उनका ज़िम्मेदारी से इस्तेमाल करना चाहिए। कुछ चीज़ें ऐसी होती हैं जिन्हें सामूहिक रूप से इस्तेमाल करना होता है, जैसे कि कैंची। हम उन्हें दिखाते हैं कि उपयोग के बाद इसे कैसे सुरक्षित रूप से एक निश्चित स्थान पर रखा जाए ताकि जब ज़रूरत हो तो दूसरे इसे इस्तेमाल कर सकें। हम उन्हें बार-बार यह बताते हैं कि संसाधन हम सभी के लिए हैं और हमें केवल उतना ही लेना चाहिए जितने की हमें वास्तव में ज़रूरत है। बतौर सुगमकर्ता हम भी साधनों का उपयोग सोच-समझकर और ज़िम्मेदारी के साथ करते हैं। बच्चे इससे काफ़ी हद तक सीखते हैं कि हम चीज़ों का इस्तेमाल किस तरह करते हैं।

निडरता और परस्पर सहयोग की भावना

निडरता का माहौल बनाना एक मुश्किल काम है क्योंकि 6-7 साल की उम्र के होने तक बच्चों को यह सिखा दिया जाता है : "यह मत करो, वह मत करो, इसे मत छुओ, उसे मत छुओ, यह मत कहो, वह मत कहो।" इससे वे चुप हो जाते हैं और इसका उन पर बहुत नकारात्मक असर पड़ता है – वे ग़लतियाँ करने से डरने लगते हैं। ग़लती करने का डर और असफलता का डर रचनात्मकता के दो सबसे बड़े दुश्मन हैं। इसके कारण बच्चे नई चीज़ों को तलाशना, प्रयोग करना और कुछ नया करना बन्द कर देते हैं। अपनी कार्यशालाओं में हम ऐसा माहौल बनाते हैं जहाँ बच्चों को डाँटा नहीं जाता, सज़ा देना तो दूर की बात है। हम ऊँची आवाज़ में बात नहीं करते और लगातार बच्चों से कहते रहते हैं कि उन्हें भी अपनी आवाज़ ऊँची करने की ज़रूरत नहीं है। उन्हें बस ऐसे लहज़े में और इतनी ही तेज़ आवाज़ में बोलना है कि दूसरे उन्हें सुन सकें। बच्चे अपनी राय, सुझाव-विचार बिना किसी रोक-टोक के रख सकते हैं। ऐसा माहौल बनाने में हमें लगभग 5 से 6 साल लगे, लेकिन अब हम देख सकते हैं कि बच्चे खुल गए हैं और उन्हें जो कहना होता है, उसे बिना किसी डर के कहते हैं।

बच्चों के बीच झगड़ा होना स्वाभाविक है। जहाँ लड़कों में हाथापाई हो जाती है, वहीं लड़कियाँ छोटे-छोटे समूह बनाकर दूसरों से दूरी बना लेती हैं। दोनों ही व्यवहार उनके विकास के लिए नुकसानदायक होते हैं। हम प्यार और देखभाल भरा माहौल बनाना चाहते थे, लेकिन समझ नहीं पा रहे थे कि कहाँ से शुरू करें। फिर हमारी एक सुगमकर्ता ने एक अद्भुत सुझाव दिया। उन्होंने कहा कि परस्पर सहयोग व मित्रता की शुरुआत हमसे ही होनी चाहिए, इसलिए हमने पूरी चेतना के साथ अच्छे और दयालु बनने की कोशिश की। साथ ही एक-दूसरे का ख़्याल रखने का प्रयास किया। लोग इन व्यवहारों को तुरन्त नहीं समझ पाते हैं। इसमें समय लगता है। हम दूसरों का सम्मान करने और प्यार करने के बारे में बच्चों से बात करते थे। यह कहना आसान था, लेकिन सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि बतौर सुगमकर्ता हम बच्चों के साथ कैसा बर्ताव कर रहे थे। हम सभी बच्चों के साथ बहुत प्यार और देखभाल से पेश आते थे। मुझे लगता है कि बच्चे इस प्यार और देखभाल को महसूस कर सकते हैं और इससे उनके अन्दर भी इसी तरह की भावनाएँ पैदा होती हैं। अब हमें उन्हें याद दिलाने की ज़रूरत नहीं पड़ती। प्यार और देखभाल बड़े बच्चों से छोटे बच्चों तक स्वाभाविक रूप से पहुँचते हैं।

किसी भी संस्कृति का निर्माण करना आसान नहीं होता है। इसके लिए उन मूल्यों या गुणों की स्पष्ट व गहन समझ ज़रूरी होती है जिन्हें आप बढ़ावा देना चाहते हैं। साथ ही यह भी ज़रूरी होता है कि आप अन्य लोगों को इनके बारे में समझाएँ। ऐसे व्यवहारों का तब तक बार-बार लगातार अभ्यास करना पड़ता है जब तक कि ये आदतें न बन जाएँ। धीरे-धीरे आदतें एक संस्कृति का रूप ले लेती हैं। एक बात जो हमें ध्यान में रखनी चाहिए वह यह है कि सिर्फ़ 'कहने' का लोगों पर कोई असर नहीं पड़ता। जो कहा जाता है उसे सुन लिया जाता है और भुला दिया जाता है, लेकिन जो किया जाता है उसे सीखा जाता है और उसका अनुसरण किया जाता है। यह भी मैंने बहुत स्पष्ट रूप से देखा है कि यदि कुछ व्यवहार केवल दूसरों को प्रभावित करने के लिए 'दिखाए' जाते हैं और हमारे स्वाभाविक आचरण का हिस्सा नहीं होते, तो लोग इस दिखावे को समझ जाते हैं और ऐसे व्यवहारों को नकार देते हैं।

इन सभी सालों के अनुभव से हमें यह समझ आया है कि किसी संस्कृति का निर्माण करना कठिन भी है और आसान भी। कठिन इसलिए है क्योंकि यह बहुत जटिल होता है और इसके लिए समय और प्रयोग की ज़रूरत होती है। आसान इसलिए है क्योंकि यदि हम उस संस्कृति को 'जीते' हैं, तो हमें और कुछ करने की ज़रूरत नहीं होती। हमें सिर्फ़ वही करना होता है जो हम बच्चों को सिखाना चाहते हैं और वे हमारा अनुसरण करेंगे। वे क्या सीखेंगे और क्या नज़रअन्दाज़ करेंगे, यह आपके हाथ में नहीं होता। लेकिन इस बात की सम्भावना ज़्यादा है कि वे आपका अनुसरण करेंगे।

उमाशंकर पेरिओडी 2003 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन से जुड़े हुए हैं और विकास के क्षेत्र में चार दशकों से काम कर रहे हैं। उन्होंने समाज कार्य में स्नातकोत्तर की उपाधि प्राप्त की है और वह दलितों, आदिवासियों और अन्य कमज़ोर वर्गों को उनके अधिकारों की माँग के लिए संगठित करने में जुटे रहे हैं। कर्नाटक स्टेट ट्रेनर्स कलेक्टिव के संस्थापक सदस्य होने के नाते उन्होंने शिक्षकों और फील्ड कार्यकर्ताओं को 'बेयरफुट रिसर्च' (Barefoot research) में प्रशिक्षित किया है। उनसे periodi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवादक : कविता तिवारी **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** प्रतिका गुप्ता

गणित के डर से छुटकारा पाना

रजनी द्विवेदी

गणित अकसर बच्चों को, और बहुत से वयस्क लोगों को भी डराता है। सभी बच्चों को दसवीं कक्षा तक गणित सीखनी होती है। हालाँकि, तीसरी-चौथी कक्षा में पहुँचते-पहुँचते, वे इससे दूर जाने लगते हैं। वही बच्चे, जो पहली और दूसरी कक्षाओं में गणित को समझने के लिए आतुर रहते थे और गणित से जुड़ने की कोशिश करते थे, गणित में पिछड़ने लगते हैं। और जैसे-जैसे वे आगे की कक्षाओं में जाते हैं, गणित के नाम मात्र से घबराने लगते हैं। भारत में नीतिगत दस्तावेज़ इस समस्या को उजागर करते रहे हैं। इसी कड़ी में हालिया दस्तावेज़ स्कूली शिक्षा के लिए राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2023 भी उल्लेख करता है कि गणित के डर के पीछे दो मुख्य पहलू हैं : (i) विषय की प्रकृति और इसे पढ़ाने व इसका आकलन करने के तरीक़े; और (ii) समाज में इसे किस प्रकार देखा जाता है (NCF-SE 2023, पृष्ठ 271)।

इस लेख में, सबसे पहले संक्षेप में हम उन प्रक्रियाओं और तरीक़ों के बारे में बात करेंगे, जिनकी वजह से गणित के प्रति यह डर पैदा होता है। इसके बाद हम इस पर चर्चा करेंगे कि कक्षा में इसे कैसे पढ़ाया जा सकता है ताकि सभी बच्चों में गणित के प्रति दिलचस्पी और इसकी समझ विकसित हो। मैं दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षा के साथ जो काम कर रही हूँ, यह लेख उसी पर आधारित है।

गणित को कैसे पढ़ाया जाता है

शुरुआती कक्षाओं में (यहाँ तक कि चौथी कक्षा तक में भी) जिस तरीक़े से गणित पढ़ाया जाता है, उसमें गिनती करने और चार अंकगणितीय संक्रियाओं (arithmetic operations) के अलावा और किसी भी चीज़ पर ध्यान नहीं दिया जाता। ब्लैकबोर्ड पर सवालों के हल चरण-दर-चरण लिख दिए जाते हैं और फिर हर एक चरण को समझाया जाता है। इसके बाद, बच्चों को ब्लैकबोर्ड से देखकर हल को अपनी कॉपी में उतारना होता है। उन्हें एक और काम जो दिया जाता है, वह होता है अंकगणितीय तथ्यों, परिभाषाओं और अल्गोरिद्म (आवश्यक चरणों का समूह) को याद करना। बच्चे इन्हें याद करने की कोशिश तो करते हैं, लेकिन जैसे-जैसे वे आगे की कक्षाओं में जाते हैं, 'निरर्थक-सी परिभाषाओं और प्रक्रियाओं' को पूरा याद रखने और सही जगहों पर उनका सही तरीक़े से इस्तेमाल करने का बोझ बढ़ता चला जाता है। जिन संख्याओं के साथ बच्चों को काम करना होता है, जैसे-जैसे उनका आकार बढ़ता जाता है, बच्चों के लिए उन्हें समझ पाना असम्भव होता जाता है। नतीजन, सही जवाब पाने के लिए अल्गोरिद्म, शॉर्टकट और तरक़ीबों को इस्तेमाल करना उनके लिए मुश्किल होता जाता है। चूँकि उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं होती कि उन्हें जवाब के तौर पर कौन-सी संख्या मिलनी चाहिए, इसलिए हर एक उत्तर उन्हें सही (या ग़लत) लगता है। इसकी वजह से गणित से जुड़ा हुआ उनका डर, व्यग्रता और बेबसी का एहसास बढ़ जाता है।

ऐसी स्थिति में एक स्वाभाविक-सा सवाल यह उभरकर आता है कि क्या ऐसी कुछ प्रक्रियाएँ और अभ्यास हो सकते हैं, जिनकी मदद से बच्चे न सिर्फ़ गणित की अवधारणाओं को सीख सकें, बल्कि उन्हें सीखने का आनन्द भी लें? एनसीएफ़-एसई-2023 में लिखा है, "गणित शिक्षण की पाठ्यचर्या का उद्देश्य विद्यार्थियों में बुनियादी संख्या ज्ञान, गणितीय सोच और प्रश्न-हल करने की क्षमताओं का विकास करना ही नहीं है, बल्कि इसका उद्देश्य आनन्द, आश्चर्य, व जिज्ञासा को बढ़ावा देना और पैटर्न देखने की व गणितीय अवधारणाओं तथा विचारों के आकर्षण और उनके सौन्दर्य को समझने की क्षमता को विकसित करना भी है। इसके साथ ही, इसका उद्देश्य आज के समय में लोगों में व्यापक रूप से व्याप्त गणित के डर को दूर करना भी है।" (NCF-SC,2023, पृष्ठ 37)

गणित से डरने का कोई औचित्य नहीं है

अकसर यह कहा जाता है कि शिक्षक के बर्ताव और कक्षा के सहज माहौल से बच्चों को सहज महसूस कराने में मदद मिलती है। और अगर ख़ुद शिक्षक गणित को भयानक नहीं मानते हैं, तो बच्चों के पास इससे इतना डरने की कोई वजह नहीं होगी। यह कुछ वैसा ही है कि अगर आपको छिपकलियों से डर लगता है, तो शायद आपके बच्चे भी उनसे डरेंगे।

> मेरा अनुभव यही रहा है कि आमतौर पर पहली और दूसरी जैसी कक्षाओं की शुरुआत में बच्चे गणित से नहीं डरते। अगर मैं उन्हें मौक़ा देती हूँ, तो वे अवधारणाओं में रुचि दिखाते हैं और उन्हें समझने का प्रयास करते

हैं। इसलिए, बच्चों के लिए गणित को दिलचस्प बनाने वाली प्रक्रियाओं की शुरुआत इन शुरुआती कक्षाओं में ही होनी चाहिए। कोशिश यह होनी चाहिए कि बच्चों को उनकी कक्षा के स्तर के अनुरूप सवाल दिए जाएँ और उन्हें उनके जवाब पता करने के प्रयास करने के मौक़े दिए जाएँ। इसकी छूट होनी चाहिए कि वे जितनी बार भी इन्हें सुलझाना चाहें, सुलझाएँ और जितना भी समय लगाना चाहें, लगाएँ। लेकिन सीखने के आसान रास्ते के तौर पर उन्हें सवालों के हल नहीं बताए जाने चाहिए।

दूसरी, तीसरी और चौथी कक्षाओं के बच्चों के साथ गणित सीखने-सिखाने के दौरान मैंने पाया कि गणित करने के दौरान लिखित सामग्री को पढ़ने की दिशा में उनके साथ ज़्यादा काम नहीं किया जाता। बच्चे दिए गए अभ्यास में संख्याओं, चिह्नों, संकेतों और सवालों के क्रम को देखते हैं और अन्दाज़ा लगाते हैं कि उन्हें जोड़ लगाना है या फिर किसी अन्य गणितीय संक्रिया को करना है। वे निर्देशों, इबारती सवालों, उदाहरणों और किताब में दी गई अन्य लिखित सामग्रियों को ख़ुद से नहीं पढ़ सकते। और जैसे-जैसे वे आगे की कक्षाओं में जाते हैं, पढ़ने और समझने का यह काम और ज़्यादा मुश्किल होता चला जाता है। धीरे-धीरे वे गणित से और भी ज़्यादा दूर होते चले जाते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि वे शुरुआत से ही गणित को पढ़ना सीखें। उन्हें निर्देशों को पढ़ना चाहिए और अगर वे उन्हें समझ न सकें, तो इस बारे में कक्षा में बातचीत होनी चाहिए। गणित और गणितीय सोच से परिचय के लिए उन्हें इबारती सवालों को ख़ुद से पढ़ना चाहिए और अपने आप से नए इबारती सवाल बनाने चाहिए (पहले बोलकर और फिर लिखकर)। उदाहरण के लिए, ऐसे सवाल कि एक टोकरी में 10 आम हैं और उसमें 5 आम और डाल दिए गए, अब उस टोकरी में कितने आम हैं; अगर एक मेज़ के 4 पैर हैं, तो 4 मेज़ों के कितने पैर होंगे? इन दोनों ही सवालों को जोड़ के सवाल माना जा सकता है, लेकिन इनकी प्रकृति अलग है।

पढ़ना सीखना बच्चों को कई मायनों में मदद करता है। पहली बात तो, इससे उनमें सीखने को लेकर आत्मविश्वास विकसित होता है। दूसरा, सवालों को पढ़ने के दौरान, बच्चे अलग-अलग तरह के सवालों के बीच फ़र्क़ समझने लगते हैं, जिसका मतलब यह है कि वे गणित की अवधारणाओं को भी पहले से थोड़ा बेहतर समझने लगते हैं। मैं वर्तमान कक्षा-2 के साथ पिछले डेढ़ महीने से काम कर रही हूँ। हम संक्षिप्त निर्देशों और इबारती सवालों को पढ़ते हैं, और हर एक बच्चा उन्हें समझने की कोशिश करता है। कभी-कभार, कुछ बच्चों को पढ़ने में थोड़ी ज़्यादा मदद की ज़रूरत होती है, तो ऐसे में मुझे उनके साथ अलग से काम करना पड़ता है। कभी-कभी, उनके दोस्त पढ़ने में उनकी मदद कर देते हैं और कभी वे सवालों को बोर्ड पर लिख देते हैं और एक-दूसरे की मदद से उन्हें पढ़ते हैं। लेकिन, अब सभी बच्चों ने पढ़ना शुरू कर दिया है। जब मैं उनसे कहती हूँ कि अब हमें पढ़ना होगा और पढ़ने में उनकी मदद करती हूँ, तो उन्हें यह एहसास होने लगता है कि पढ़ना ज़रूरी है और यह ऐसा कुछ है, जिसे वे कर सकते हैं।

ऐसा कहा जाता है कि पढ़ना और लिखना साथ-साथ चलते हैं। और चूँकि वे पढ़ सकते हैं, तो वे दिए गए सवालों को ध्यान से पढ़ते हैं। और वे अपने ख़ुद के सवाल भी बनाते हैं जब उनसे ऐसा करने को कहा जाता है। और धीरे-धीरे ऐसा होता है कि जब उनसे ऐसा करने को नहीं भी कहा जाता, तो भी वे अपने सवाल बनाते हैं। अधिकांशतः, वे वैसे ही वाक्यों वाले सवाल बनाते हैं, जैसे उनकी वर्कशीट या पाठ्यपुस्तक में दिए गए होते हैं, लेकिन इनमें नई संख्याएँ और कुछ नए शब्द होते हैं। अब, वे मुझसे अकसर पूछते हैं, "क्या हम अपने ख़ुद के सवाल बनाएँ?" इससे पता चलता है कि उन्हें इस काम में मज़ा आता है।

यह ज़रूरी है कि कक्षा चाहे जो भी हो, बच्चों को ऐसे कार्य दिए जाएँ, जिन्हें वे दिलचस्पी के साथ कर सकें। कक्षा-3 में, यह सवाल दिया गया था : कुल 3500 हासिल करने के लिए अलग-अलग संख्याओं का योग करें। यह सवाल बच्चों को उनकी भाषा में उदाहरणों सहित समझाने के बाद भी, बहुत से बच्चे इसे समझ नहीं सके। लेकिन, जब उन्हें अलग-अलग संख्याओं का योग करके 20 हासिल करने का काम दिया गया, और इसके कुछ उदाहरणों की उनके साथ चर्चा की गई, तो उन्हें समझ आ गया और उन्होंने कई नए सवाल बनाए। यहाँ, मैं कुछ और महत्त्वपूर्ण बातों की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगी, जिनसे किसी शिक्षक को मदद मिल सकती है।

कुछ कारगर तरीक़े

सबसे पहले तो, बच्चों के साथ गणित के सवालों को हल करते समय हमें ऐसी भाषा का इस्तेमाल करना चाहिए, जिसमें बच्चे सहज हों। दूसरी बात यह याद रखनी ज़रूरी है कि गणित के पैटर्न इसकी एक ख़ास विशेषता हैं। आइए हम अपने पिछले सवाल पर वापस आते हैं, जिसमें बच्चों से 3500 हासिल करने के लिए अलग-अलग संख्याओं का योग करने को कहा गया था। अगर बड़ी संख्याएँ देने पर बच्चों को कोई तरकीब न सूझे, तो इसी अवधारणा पर काम करने के लिए छोटी संख्याओं का इस्तेमाल किया जा सकता है। तीसरी बात

दिए गए कार्य की प्रकृति के बारे में है। जैसे कि इस कार्य में, एक तरफ़ तो बच्चे जोड़, घटा और छोटी-बड़ी संख्याओं की अवधारणा पर काम कर रहे थे, दूसरी तरफ वे संख्याओं को दूसरी संख्याओं के सम्बन्ध में देखना भी सीख रहे थे। ऐसे में, इस तरह के सवालों के कई जवाब हो सकते हैं, और सब सही। चौथी बात एक से अधिक सही जवाबों वाले सवालों के होने की सम्भावनाओं के बारे में है। इस क़िस्म के कई सवाल बनाए जा सकते हैं, जिनमें हर एक के कई जवाब होंगे, और जब बच्चे सवाल बनाएँगे, उन्हें पता चलेगा कि और अधिक सवाल बनाए जा सकते हैं, और फिर यह उनके लिए एक खेल बन जाता है, जिसे वे जितनी ज़्यादा देर तक खेल सकते हैं, खेलने की कोशिश करते हैं।

गणित की कक्षा इस तरह की होनी चाहिए कि बच्चे दिए गए सवालों और उन्होंने उन सवालों को कैसे समझा और हल किया इस बारे में बात कर सकें, भले ही उन्होंने इन्हें सही हल किया हो या ग़लत। कई बार, जब उनसे पूछा जाता है : तुमने यह सवाल कैसे किया? तो सवाल को हल करने के लिए उनके द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के बारे में सोचने के दौरान उन्हें ख़ुद ही एहसास हो जाता है कि उनसे कहाँ गलती हुई और उसे कैसे सुधारना है। उदाहरण के लिए, कक्षा-3 में, यह सवाल किए जाने पर कि 'एक ऐसी संख्या लिखो, जिसके इकाई के स्थान पर एक और दहाई के स्थान पर 2 हो', एक जवाब 12 लिखा गया था। जब मैंने उस बच्चे से इसे दोबारा पढ़ने को कहा, तो उसने तुरन्त इसे ठीक कर दिया।

इसी प्रकार, आरोही (ascending) और अवरोही (descending), इकाई और दहाई, पूर्ववर्ती (preceding) और अनुवर्ती संख्याएँ (succeeding numbers), जैसे शब्द ऐसी अवधारणाएँ हैं, जिनको बच्चे ज़्यादा आसानी से समझ सकेंगे, अगर कक्षा में इनके बारे में बातचीत हो। उदाहरण के लिए, कक्षा-3 के बच्चों ने *आरोही* शब्द को कई तरीक़ों से समझाया – कुछ ने कहा बढ़ता क्रम, कुछ ने कहा 1 से लेकर 10 तक, और कुछ ने कहा छोटी से बढ़ी संख्या की ओर, वग़ैरह। इसके अलावा, हमने ऐसे सवालों पर भी चर्चा की कि कोई संख्या किसी दूसरी संख्या से पहले या बाद में क्यों आती है। ऐसी बातचीत से बच्चों को अवधारणाओं को समझने में और उन अवधारणाओं के बारे में अपनी ख़ुद की परिभाषा गढ़ने में मदद मिलती है। अपनी ख़ुद की चीज़ गढ़ना किसी को भी बहुत ख़ुशी और आत्मविश्वास देता है।

गणित को लेकर यह मान्यता भी डर की वजह बनती है कि इसे एक निश्चित क्रम में और एक निश्चित समय सीमा में सीखना होता है। अगर बच्चों को अमूर्तिकरण के बारे में सोचना और समझना सीखना हो, तो हमें हर एक अवधारणा पर उतना समय खर्च करना पड़ेगा, जितना बच्चों को उसे समझने के लिए आवश्यक हो। और फिर शिक्षक को उसी अवधारणा को कुछ दिनों के बाद फिर से समझाना पड़ेगा। केवल पाठ्यक्रम पूरा करने के लिए किसी अवधारणा को जल्दबाज़ी में 'पढ़ा देने' और यह मान लेने से कि 'एक बार पढ़ा देने के बाद वह अवधारणा पूरी हो गई है' ज़्यादा कुछ हासिल नहीं होता। दरअसल, अगर बच्चे अभी भी किसी अवधारणा को समझने की जद्दोजहद कर रहे हों और उनके सामने अगली अवधारणा प्रस्तुत कर दी जाए, और यह क्रम चलता रहे, तो कई बच्चे बिलकुल पीछे छूट जाते हैं। इसलिए यह ज़रूरी है कि बच्चों को गणित से जुड़ने, समझने और इसे करने के लिए पर्याप्त समय दिया जाए। उदाहरण के लिए, अगर बच्चों के साथ संख्या रेखा पर काम कर रहे हों, तो यह मान लेना सही नहीं है कि केवल 0 से लेकर 10 तक और 0 से 100 तक एक संख्या रेखा बना देना और इन पर कुछ संख्याओं को दर्शा देना ही बच्चों के लिए इस अवधारणा को समझने के लिए काफ़ी है। किसी संख्या रेखा को समझने का मतलब है कि बच्चे ख़ुद से विभिन्न संख्याओं को इस पर दर्शा सकें। उन्हें यह देखना आना चाहिए की कि कोई संख्या किसी दूसरी संख्या से कितनी छोटी या बड़ी है और उसे संख्या रेखा पर कहाँ दर्शाया जाए। उनके लिए यह समझना भी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि संख्या रेखा की अवधारणा कोई अलग अवधारणा नहीं है, बल्कि यह छोटी और बड़ी संख्याओं तथा जोड़ व घटा की संक्रियाओं से सम्बन्धित है।

अकसर अवधारणाओं को क्रम से, एक के बाद एक, इस तरह से पढ़ाया जाता है, मानो अन्य अवधारणाओं से उनका कोई सम्बन्ध ही न हो। गणित की अवधारणाएँ आपस में जुड़ी हुई होती हैं और जब सीखने वाला इन्हें किसी समग्र रूप के एक अंश के रूप में समझता है, तो हर एक अवधारणा की उसकी समझ बेहतर हो जाती है। लेकिन पढ़ाने के दौरान, इस बात को भुला दिया जाता है। इस वजह से गिनना, संख्याएँ, अंक, जोड़, घटा, स्थानीय मान और आरोही व अवरोही क्रम में लिखना जैसी सभी अवधारणाएँ बच्चों के दिमाग़ में तो होती हैं, लेकिन हर एक पृथक होती है और उनका आपस में कोई सम्बन्ध नहीं होता। इस वजह से उनके लिए पैटर्न को देखना, समझना और बना पाना और उनके साथ खेल पाना इतना मुश्किल हो जाता है। इसलिए यह ज़रूरी है कि बच्चों से ऐसे सवाल किए जाएँ या उन्हें ऐसे कार्य दिए जाएँ, जिनमें उन्हें अवधारणाओं के बारे में अपनी मौजूदा समझ को इस्तेमाल करने की कोशिश करनी पड़े।

गणित का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य यह है कि बच्चे 'गणितीकरण' करना और तार्किक रूप से सोचना सीख सकें। अकसर, बच्चों को गणित सीखने के पर्याप्त अवसर नहीं मिलते हैं, इसलिए उन्हें यह अरुचिकर और नीरस विषय लगता है। पैटर्न बनाना, पड़ताल और खोज करना, एक सवाल को कई तरीक़ों से हल करना और गणित के सवाल बनाना, यह सब गणितीकरण का हिस्सा हैं, जिन्हें करने में सभी बच्चों को आनन्द आना चाहिए।

रजनी द्विवेदी अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के साथ जुड़ी हुई हैं और विश्वविद्यालय की पत्रिका, *पाठशाला भीतर और बाहर* के सम्पादक मण्डल की सदस्य हैं। उनसे rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : शहनाज़ **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** प्रतिका गुप्ता

स्कूल संस्कृति | विभिन्न परिस्थितियों और समय अवधियों में भिन्नताएँ

राहुल मुखोपाध्याय

स्कूल संस्कृति का मतलब मूल रूप से इसके हितधारकों यानी स्कूल के प्रशासन, प्रबन्धन, शिक्षकों, बच्चों, माता-पिता और समुदाय में शिक्षा का एक उद्देश्य स्थापित करना है। यह उद्देश्य औपचारिक योग्यताओं और प्रमाणपत्रों पर ज़ोर देने, कौशल निर्माण, रोज़गार क्षमता, और यहाँ तक कि ज्ञान सृजन की निरन्तरता बनाए रखने जैसे शिक्षा के संकीर्ण उपयोगितावादी उद्देश्यों तक ही सीमित नहीं होना चाहिए। इसका यह मतलब नहीं है कि ये उद्देश्य स्कूली शिक्षा के उद्देश्य नहीं हो सकते या नहीं होने चाहिए। लेकिन, अगर ये उद्देश्य स्कूल के अस्तित्व में होने के सबसे महत्त्वपूर्ण कारण बन जाते हैं, तब हमारा चिन्ता करना जायज़ है। अगर स्कूल हमें विविधता के प्रति सम्मान, न्याय की भावना, ज़िम्मेदारी और ईमानदारी जैसे बुनियादी मानवीय मूल्य, क़ानूनी, नैतिक, सामाजिक और पर्यावरणीय निहितार्थों के सन्दर्भ में सही और ग़लत के बीच अन्तर करने के तरीक़े, और सशक्त बनाने वाले, परवाह करने वाले एवं विवेचनात्मक रूप से चिन्तनशील तरीक़ों से दूसरों के साथ अपने रिश्ते के सन्दर्भ में ख़ुद को समझना नहीं सिखाते हैं, तो हम शायद शिक्षा के मूल लक्ष्य को हासिल करने से चूक जाते हैं।

यह ध्यान रखना ज़रूरी है कि संस्कृति विशेषताओं का एक अपरिवर्तनीय समूह नहीं है, चाहे हम उन्हें स्कूल के रिवाज कहें, रोज़मर्रा की प्रथाएँ कहें या विश्वास प्रणालियाँ। संस्कृति लगातार बदलती है और स्कूल के विभिन्न घटकों से ही यह निर्मित और पुनर्निर्मित होती है, जिसका अर्थ यह है कि किसी निश्चित समय अवधि में स्कूलों की एक ख़ास संस्कृति हो सकती है, जिसमें कुछ विशिष्ट घटक (जैसे कि इसके प्रबन्धन में शामिल लोग, प्रधान शिक्षक, शिक्षक या इसमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की पृष्ठभूमि) शामिल होते हैं। किसी और समय अवधि में लोगों के अलग समूह के साथ स्कूल की एकदम अलग संस्कृति हो सकती है। भारत के सन्दर्भ में हम एक और ग़लती करते हैं। हम एकदम अलग तरह के संस्थानों से सम्बद्ध स्कूलों की संस्कृतियों को एक जैसी मानते हैं। आइए इसे स्पष्ट करने के लिए दो काल्पनिक उदाहरण लेते हैं। काल्पनिक होने के बावजूद भी, ये उदाहरण भारत में स्कूली शिक्षा प्रणाली की समकालीन सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक वास्तविकताओं का उपयोग ही करते हैं।

स्कूल अ

इस सरकारी प्राथमिक स्कूल की स्थापना 1970 के दशक की शुरुआत में हुई थी। यह एक समृद्ध ग्रामीण क्षेत्र में स्थित था, जो कि जिला मुख्यालय से ज़्यादा दूर नहीं था, लेकिन उसके बाद भी यहाँ के लिए नियमित सार्वजनिक परिवहन सुविधाओं का अभाव था। इस क्षेत्र के परिवारों का मुख्य व्यवसाय कृषि और सम्बन्धित गतिविधियाँ थीं। स्कूल पंचायत के छह गाँवों को शैक्षिक सेवाएँ प्रदान करता था। पहले दो दशकों में, इसने अधिकतर पंचायत की प्रभुत्व वाली जाति को सेवा प्रदान की थी, जिन्हें हरित क्रान्ति से फ़ायदा हुआ था और वे अपने बच्चों को शिक्षित करने के लिए उत्सुक थे। क्षेत्र में रहने वाले अनुसूचित जाति और जनजातियों के परिवार अपने बच्चों को स्कूल भेजने की स्थिति में नहीं थे। इसकी वजह यह थी कि स्कूल भेजने की अवसर लागत[i] (opportunity costs) उनके लिए बहुत अधिक थी, यहाँ तक कि बच्चों को सरकारी स्कूल में भेजना भी उनके लिए इतना मँहगा था कि उसे वहन कर पाना उनकी वित्तीय क्षमता से परे था।

स्कूलों में शिक्षकों की संख्या पर्याप्त थी और एक ऊर्जावान और सक्रिय प्रधान शिक्षक की बदौलत वे प्रभुत्वशाली जाति के बच्चों के साथ सार्थक ढंग से जुड़ पा रहे थे। इन बच्चों को घर पर शिक्षा का कुछ अनुभव हासिल था। उनके माता-पिता ने बुनियादी स्तर की स्कूली शिक्षा पूरी की थी और स्कूल के घण्टों के अलावा अतिरिक्त समय, अवसर और सुविधाएँ प्रदान करके अपने बच्चों की शिक्षा में सहायता प्रदान करने में उनकी दिलचस्पी थी। समाज के निचले दर्जे से आने वाले कुछ बच्चों की स्कूल में उपेक्षा की जाती थी, और शिक्षक अपने तौर-तरीक़ों में आस-पास के गाँवों में मौजूद सामाजिक विभाजनों और असमानताओं को कायम रखते थे। अकादमिक प्रदर्शन के सन्दर्भ में, प्रभुत्वशाली जातियों के बहुत-से बच्चों ने प्राथमिक स्तर से आगे सफलतापूर्वक अपनी शिक्षा जारी रखी, जबकि वंचित समूहों के अधिकांश बच्चों ने

प्राथमिक स्तर के शुरुआती सालों में ही या प्राथमिक स्तर की शिक्षा पूरी करते ही स्कूल छोड़ दिया।

गुज़रे दशकों में, स्कूल के प्रधान शिक्षक और शिक्षकों के पदों पर बदलाव हुए, प्रशासनिक तबादले हुए और पदोन्नतियाँ हुईं। इसके अलावा माता-पिता की अँग्रेज़ी माध्यम की स्कूली शिक्षा की बढ़ती आकांक्षाओं को पूरा करने के लिए कुछ छोटे निजी स्कूल भी उभरे। निजी स्कूलों के उभरने को माता-पिता में व्याप्त इस धारणा ने भी बल दिया कि सरकारी स्कूल उस गुणवत्ता की शिक्षा प्रदान करने के मामले में न्याय नहीं कर सके, जैसी वे अपने बच्चों के लिए चाहते थे। प्रभुत्वशाली जातियों के कई बच्चे इन निजी स्कूलों में चले गए, जबकि एससी, एसटी और अन्य पिछड़े वर्गों (OBCs) के बच्चे और इन समुदायों की ज़्यादा लड़कियाँ सरकारी स्कूलों में गईं; क्योंकि केन्द्र और राज्य स्तरीय सरकारी योजनाओं ने सरकारी स्कूलों में जाने की लागतों और शिक्षा की प्रत्यक्ष वित्तीय लागतों को पहले से बहुत कम कर दिया। शिक्षकों को स्कूल जाने वाले पहली पीढ़ी के बच्चों और ऐसे बच्चों को शिक्षित करने में चुनौतियों का सामना करना पड़ा, जिन्हें शिक्षा के लिए घर से बहुत कम सहायता प्राप्त थी। हालाँकि एक काबिल प्रधान शिक्षक या अपने काम के प्रति समर्पित चन्द शिक्षकों के होने से काफ़ी फ़र्क़ पड़ा। इन शिक्षकों ने स्कूल और उसके पिछले अकादमिक प्रदर्शन को उन्हें सौंपी गई विरासत माना और इसे संरक्षित करना अपनी ज़िम्मेदारी माना। नतीजन उन्होंने यह सुनिश्चित किया कि शिक्षा के नए कार्यक्रमों को स्कूल में ज़िम्मेदारी के साथ लागू किया जाए। हालाँकि, शिक्षकों के बीच जाति विभाजन से जुड़ी मान्यताएँ कायम रहीं और ये अकसर स्कूल के माहौल के विभिन्न पहलुओं में नज़र आती थीं। लेकिन शिक्षकों ने स्कूली शिक्षा के फ़ायदों, स्कूल में नियमित उपस्थिति और घर पर बच्चों की शिक्षा में सहायता के बुनियादी तरीक़ों जैसी बातों के फ़ायदों के बारे में समुदाय को जागरूक करने के लिए लोगों से संवाद करने के महत्त्व को भी समझा। नतीजन, स्कूल में नामांकित मुख्यतः वंचित समूहों के लगभग सभी बच्चे स्कूली शिक्षा के आगे के चरणों तक पहुँच सके।

स्कूल की प्रथाओं की बात करें तो, स्कूल की असेम्बली स्कूल में पिछले कई सालों से हो रही थी। इसमें बच्चे उनकी कक्षा और जेंडर के अनुसार पंक्ति में खड़े होते थे। लेकिन, असेम्बली में होने वाली विभिन्न गतिविधियों में लड़कों और लड़कियों दोनों को समान अवसर दिए जाते थे, जैसे राज्य गान और राष्ट्र गान गाना, कक्षा की गतिविधियों के दौरान विद्यार्थियों द्वारा पूरे किए गए कार्यों को साझा करना और उनका प्रस्तुतीकरण, किसी शिक्षक के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों द्वारा राज्य स्तरीय और राष्ट्र स्तरीय महत्त्वपूर्ण मुद्दों को साझा करना। अन्य प्रथाएँ जो कायम रहीं, उनमें से एक शिक्षकों में पेशेवर सौहार्द की भावना थी। इसके तहत शिक्षकों ने हर सप्ताह आधे दिन का समय कक्षा में उनकी चुनौतियों, इन चुनौतियों का सामना करने के लिए उनके द्वारा अपनाए गए तरीक़ों को साझा करने और एक-दूसरे से सुझाव माँगने के लिए निर्धारित किया। प्रधान शिक्षक की शिरक़त होने-न-होने से प्रभावित हुए बिना यह प्रक्रिया जारी रही, हालाँकि इस प्रक्रिया को शुरू करने में पहले प्रधान शिक्षक की बहुत अहम भूमिका थी।

स्कूल ब

इस ग़ैर सहायता प्राप्त निजी स्कूल की स्थापना लगभग उसी समय हुई थी, जब *स्कूल अ* की हुई थी, यानी 1960 के दशक के आख़िर में। स्कूल की स्थापना एक जानी-मानी कॉर्पोरेट इकाई के तहत एक न्यास के तौर पर हुई थी। इस कॉर्पोरेट इकाई के कई व्यावसायिक हित थे, लेकिन यह विभिन्न स्थानों पर शिक्षा और स्वास्थ्य सेवा के क्षेत्र में परोपकारी निवेशों के लिए भी जानी जाती थी। स्कूल की स्थापना एक टियर-1 शहर के केन्द्र में की गई थी। यहाँ मध्यम और उच्च वर्ग के लोगों की आबादी अच्छी-ख़ासी थी और स्कूल में शुरुआती दाखिले इन वर्गों के बच्चों के ही हुए। समय के साथ इस समूह के लोगों ने स्कूल के बारे में अपनी राय आपस में साझा की, जिससे स्कूल की प्रतिष्ठा और उसमें होने वाले नामांकन और बढ़े।

इस्तेमाल के लिए पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता होने की वजह से, शुरुआत से ही स्कूल अत्याधुनिक बुनियादी ढाँचा और सुविधाएँ विकसित कर सका और शहरी मध्यमवर्गीय पृष्ठभूमि के सुयोग्य शिक्षकों की नियुक्ति कर सका। पिछले कुछ वर्षों में, इन मानकों को बरक़रार रखा गया है और ज़रूरत के अनुसार इनमें बदलाव किया गया है। जिन परिवारों और बच्चों ने स्कूल की सेवाएँ इस्तेमाल की और जो शिक्षक यहाँ पढ़ाने आए, उन्होंने स्कूल को ख़ुद ही चुना और इसी की बदौलत स्कूल चलता रहा। कम विद्यार्थी-शिक्षक अनुपात, पाठ्यचर्या का एक समग्र दृष्टिकोण (जिसमें पाठ्यक्रम-सहगामी गतिविधियाँ शामिल थीं), शिक्षण की नई विधियों को आज़माने के लिए शिक्षकों को मिली स्वायत्तता ने विद्यार्थियों के विकास में योगदान दिया। इसके साथ ही, बच्चों को मुख्यधारा के स्कूलों के नियमित अनुशासनात्मक स्वरूपों और विषय-क्षेत्रों के बीच के स्पष्ट विभाजनों से परे जाकर प्रगति करने की आज़ादी दिए जाने से स्कूली शिक्षा पूरी करने के बाद विद्यार्थी ज़्यादा आत्मविश्वासी और सक्षम बन पाए।

सीखने-सिखाने के अपने समग्र माहौल के अनुरूप, स्कूल में अन्य प्रथाएँ भी अनूठे तरीक़ों से विकसित हुईं। स्कूल में शास्त्रीय संगीत का प्रशिक्षण लेने वाले विद्यार्थी असेम्बली में स्वेच्छा से गाने गाते थे। असेम्बली के दौरान शिक्षक

और बच्चे गोल घेरे में बैठते थे, जिसमें कक्षा और लिंग के आधार पर कोई विभाजन नहीं था। गीतों के बाद शिक्षक और विद्यार्थी आवंटित समय का इस्तेमाल उनके द्वारा सुझाव पेटी में जमा किए गए विभिन्न मुद्दों पर चर्चाएँ करने के लिए करते थे। विद्यार्थियों की आवाज़ों को जगह दी जाती थी और इस प्रकार की चर्चाओं के लिए शिक्षकों और वरिष्ठ विद्यार्थियों द्वारा मिलकर तैयार किए गए मानकों का पालन करते हुए विवादास्पद विषयों पर बहस होती थी। इनमें से कुछ विवादास्पद मुद्दों को विद्यार्थियों के नेतृत्व वाले क्लबों द्वारा परियोजनाओं के रूप में अपने हाथ में ले लिया जाता था और वे शिक्षकों के मार्गदर्शन में इन पर काम करते थे।

हालाँकि, यह स्थिति 1990 के दशक की शुरुआत तक ही बनी रही। बदलते हुए आर्थिक परिदृश्य और उसी शहर में उतनी ही या उससे ज़्यादा प्रतिष्ठा वाले निजी स्कूलों के सामने आने की वजह से स्कूल को एक प्रतिस्पर्धात्मक दुनिया के लिए अपने विद्यार्थियों की तैयारी के सवालों से दो-चार होना पड़ा। स्कूल के ट्रस्टियों ने स्कूल की कार्यनीतियों को लेकर पुनर्विचार शुरू किया, जिसके फलवरूप प्रबन्धन में शामिल लोग बदले गए और स्कूल की प्रक्रियाओं और प्रथाओं को पूरी तरह बदल दिया गया। सार्वजनिक परीक्षाओं के परिणामों, शहर भर में होने वाले पाठ्यक्रम सम्बन्धी और पाठ्यक्रम-सहगामी कार्यक्रमों में विद्यार्थियों के प्रदर्शन, और उच्च शिक्षा तथा पेशेवर जीवन में प्रवेश के बाद विद्यार्थियों के रास्ते स्कूल के लिए प्रमुख प्रेरक कारक बन गए।

स्कूल में पहले प्रति शिक्षक विद्यार्थियों की संख्या कम थी, इसकी जगह पर हर एक कक्षा में विद्यार्थियों की संख्या बढ़ाई गई। यह बदलाव कथित वैश्विक मानकों को पूरा करने के लिए बुनियादी ढाँचे और सुविधाओं को उन्नत करने की वित्तीय व्यवहार्यता को उचित ठहराने के लिए किया गया था। इसी तरह, शिक्षक की स्वायत्तता की जगह पर प्रबन्धकीय जवाबदेही की व्यवस्था लागू की गई, जिसमें सख़्त पदानुक्रम पर आधारित स्कूल प्रशासन तंत्र शिक्षक के प्रदर्शन का बारीकी से निगरानी कर रहा था। इस नई व्यवस्था ने शिक्षकों की नौकरी की सुरक्षा और स्कूल में उनकी प्रगति को उनके प्रदर्शन से जोड़ा।

स्कूल की संस्कृति : विभिन्न संस्थागत सन्दर्भ

इन दो उदाहरणों के बारे में ध्यान देने योग्य पहली बात यह है कि चार दशकों में दोनों स्कूलों की संस्कृति में बदलाव आया था। *स्कूल अ ने* ज़्यादा समावेशी संस्कृति बनाने की दिशा में काम किया, हालाँकि स्कूल के शिक्षकों की मान्यताओं पर अभी भी उस निकटतम सामाजिक और सांस्कृतिक माहौल का गहरा प्रभाव है, जिसमें स्कूल स्थित है। इसी प्रकार, *स्कूल ब* को एक बदले हुए आर्थिक परिदृश्य की वजह से पड़ने वाले बाहरी दबावों के अनुरूप ख़ुद में बदलाव लाना पड़ा क्योंकि इस बदले हुए आर्थिक परिदृश्य के अनुरूप उच्च और मध्यम वर्ग की शिक्षा प्रणाली से अपेक्षाएँ और माँगें बदल गई थीं। *स्कूल अ* की तुलना में *स्कूल ब* ने मानक स्कूली संस्कृति (शिक्षा के मूल्यों और उद्देश्यों पर आधारित) से उपयोगितावादी स्कूली संस्कृति (केवल आर्थिक तैयारी पर केन्द्रित शिक्षा के उद्देश्यों पर ज़्यादा आधारित) में रूपान्तरण किया। इस प्रकार, स्कूल की संस्कृतियाँ समय के साथ बदलती हैं।

दूसरा बिन्दु यह है कि हम अकसर बिलकुल जुदा संस्थागत सन्दर्भों में स्थित स्कूलों की संस्कृतियों की तुलना करने की ग़लती करते हैं। यह विशेष रूप से तब सच हो जाता है, जब सरकारी स्कूलों की तुलना निजी स्कूलों से की जाती है, ख़ासकर उन निजी स्कूलों से, जिनमें उच्च और मध्यम वर्ग के लोग अपने बच्चों को भेजते हैं। सरकारी स्कूल अभी भी सूक्ष्म सन्दर्भों (सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनीतिक) से बहुत गहराई से जुड़े होते हैं। वे इन सन्दर्भों से प्रभावित होते हैं और उन्हें प्रभावित भी करते हैं। स्कूल अकसर इन सूक्ष्म सन्दर्भों को ही पुनरुत्पादित करते हैं या फिर उन्हें प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इनके बारे में जागरूक होने की ज़रूरत होती है। सरकारी स्कूलों की यह विशेषता उनकी प्रकृति से जुड़ी होती है। सरकारी स्कूल इस विचार पर आधारित होते हैं कि शिक्षा हर किसी के लिए उपलब्ध होनी चाहिए और उन्होंने ऐतिहासिक रूप से शिक्षा से वंचित हाशिए के समुदायों के लिए शिक्षा को उत्तरोत्तर अधिक सुलभ बनाने की दिशा में काम किया है। सरकारी स्कूलों की संस्कृतियों को भी न केवल उस संस्थागत प्रणाली के सन्दर्भ से अलग करके नहीं देखा जा सकता, जिसका वे हिस्सा होते हैं यानी स्कूल के प्रशासन का व्यापक ढाँचा, बल्कि उस राज्य विशेष में शासन की संस्कृति से भी अलग करके नहीं देखा जा सकता।

दूसरी ओर, निजी स्कूलों पर इस तरह का दायित्व कभी नहीं रहा। हालाँकि ऐसे निजी स्कूल भी रहे हैं जिन्होंने इन्ही सिद्धान्तों का पालन किया है, लेकिन उनकी संख्या बहुत कम है। कुछ हद तक, विभिन्न प्रकार के निजी स्कूलों में 'सुरक्षापूर्ण समुदाय' की विशेषताएँ होती हैं। इसके तहत वे ख़ुद को अपने आस-पास के सूक्ष्म सन्दर्भों से अलग रख सकते हैं और ऐसी प्रक्रियाएँ विकसित कर सकते हैं, जो बच्चों को स्कूल की एक विशिष्ट संस्कृति से परिचित कराएँ।[ii] इस शृंखला के एक छोर पर, हमें ऐसे अभिजात बोर्डिंग स्कूल और बहुत से वैकल्पिक स्कूल नज़र आ सकते हैं, जो उच्च मध्यम वर्गों और मध्यम वर्गों की ज़रूरतों को पूरा करते हैं। वहीं शृंखला के दूसरे छोर पर, हमें ग्रामीण और शहरी दोनों ही क्षेत्रों में छोटे निजी स्कूल नज़र आते हैं, जो शिक्षा का थोड़ा बहुत ख़र्च उठा सकने में

सक्षम आबादी के अपेक्षाकृत ग़रीब तबक़ों की शिक्षा की ज़रूरतों को पूरा करते हैं। इस पूरी शृंखला में ही, निजी स्कूलों में सामान्यतः ज़्यादा कसी हुई प्रशासनिक व्यवस्थाएँ होती हैं जो कॉर्पोरेट संस्थाओं की तरह ऐसी प्रक्रियाएँ लागू करते हैं जिनके आधार पर स्कूल की दैनिक कार्यप्रणालियाँ निर्धारित की जाती हैं। इन स्कूलों का वृहद-सांस्थानिक दायरा उनके अपने प्रबन्धन निकायों तक ही सीमित होता है, उसी तरह जिस तरह उनके उद्देश्य वंचित समूहों की ज़रूरतों को पूरा नहीं करते। इसके बजाय, आमतौर पर वे अपेक्षाकृत एक जैसी सामाजिक-आर्थिक स्थितियों और पृष्ठभूमियों वाले विस्तृत मध्यम व उच्च वर्गों को सेवाएँ प्रदान करने पर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

स्कूल की संस्कृति के सन्दर्भ में क्या बातें मायने रखती हैं

पिछले खण्ड में, *स्कूल अ* और *स्कूल ब* दोनों के उदाहरणों में ऐसे कारक मौजूद हैं जिन्हें शिक्षाविदों ने जीवन्त, सकारात्मक स्कूल संस्कृतियों के लिए महत्त्वपूर्ण माना है। हालाँकि, स्कूल संस्कृति के सन्दर्भ में क्या मायने रखता है, इस सवाल के सरल व स्पष्ट जवाब देना आसान नहीं है। जैसे कि, सकारात्मक स्कूल संस्कृति के संकेत के तौर पर इस बात पर खूब ज़ोर दिया जाता है कि पाठ्यचर्या, पाठ्यपुस्तकों, शिक्षण-अधिगम सामग्रियों, शिक्षाशास्त्र और आकलनों से जुड़े हुए फ़ैसलों के सन्दर्भ में स्कूल स्तर पर स्वायत्तता हो। लेकिन किसी निजी स्कूल के लिए शुरुआती वर्षों में इसे स्थापित करना मुश्किल हो सकता है, क्योंकि शिक्षकों को उन बुनियादी विचारों, सिद्धान्तों और प्रक्रियाओं को समझने के लिए ज़्यादा मार्गदर्शन और मदद की जरूरत होती है, जिनकी परिकल्पना स्कूल को दिशा देने के लिए की गई होती है। सरकारी स्कूल के लिए भी यह मुश्किल ही है क्योंकि वहाँ आगे बढ़ाए जाने वाले एक मूल्य के तौर पर इस तरह की स्वायत्तता का समर्थन करने वाले मददगार प्रधान शिक्षक और मददगार प्रशासनिक प्रणाली की कमी होती है।

इस अस्पष्टता को देखते हुए, एक ज़्यादा व्यावहारिक तरीक़ा होगा स्कूल के उद्देश्य पर फिर से विचार किया जाए, जहाँ से हमने शुरुआत की थी। अगर कोई स्कूल शिक्षा को सार्वजनिक भलाई की वस्तु मानता है और उसका यह विचार स्कूल के रीति-रिवाज़ों, विश्वासों और रोज़मर्रा की प्रथाओं के रूप में प्रगट होता है, तो इस बात की ज़्यादा सम्भावना होती है कि वह स्कूल एक सकारात्मक संस्कृति विकसित करने के लिए काम कर रहा है। इस संस्कृति में शिक्षाविदों द्वारा स्कूली संस्कृति के अपने अध्ययनों में महत्त्वपूर्ण माने जाने वाले कारक शामिल होंगे, जैसे विविधता, सत्यनिष्ठा, दृढ़ता, लचीलापन, स्वायत्तता, ज़िम्मेदारी और आत्म-सम्मान जैसे बुनियादी मानवीय मूल्यों के प्रति सम्मान और उनसे जुड़ी विवेचनात्मक रूप से चिन्तनशील प्रक्रियाएँ, जो स्कूल के माहौल और विभिन्न हितधारकों के साथ इसके सम्बन्धों में व्याप्त होते हैं।

टिप्पणियाँ :

[i]एक विकल्प के चुने जाने पर अन्य विकल्पों का ख़त्म हो जाना।

[ii]सरकारी स्कूल की तुलना में, स्थानिक रूप से बिखरे हुए जनसंख्या समूह से परिवारों को आकर्षित करने की निजी स्कूलों की क्षमता, निजी स्कूलों के लिए उनके सूक्ष्म सन्दर्भों से एक प्राकृतिक वियोजन प्रक्रिया के रूप में भी कार्य करती है।

राहुल मुखोपाध्याय अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी, भोपाल में संकाय सदस्य हैं। उनसे rahul.mukhopadhyay@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : शहनाज़ **पुनरीक्षण :** भरत त्रिपाठी **कॉपी एडिटर :** प्रतिका गुप्ता

चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव | स्कूली संस्कृति पर स्थायी प्रभाव

रुद्रेश एस.

गुणवत्तापूर्ण सार्वजनिक शिक्षा भारत के विकास के लिए बेहद महत्त्वपूर्ण है, ख़ासतौर पर इस वक़्त जबकि देश द्रुत गति से आर्थिक, प्रौद्योगिकीय और सामाजिक बदलावों से गुज़र रहा है। सार्वजनिक शिक्षा अत्यावश्यक है ख़ासतौर पर उस स्थिति में जबकि कमज़ोर और वंचित परिवारों के बच्चे मुख्यतः सरकारी स्कूलों में ही पढ़ते हैं। हर बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान करना सरकार की संवैधानिक बाध्यता है। कुछ निश्चित स्कूली प्रथाओं की संस्कृति को विकसित करना और उसे बनाए रखना दीर्घकाल में गुणवत्तापूर्ण शिक्षा प्रदान कर सकता है, भले ही पढ़ाने वाली फैकल्टी और प्रशासन में बदलाव होते रहें।

एक टिकाऊ स्कूली संस्कृति बनाना ऐसे परिवेश को विकसित करने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता होती है जहाँ विद्यार्थी अकादमिक, सामाजिक और भावनात्मक रूप से फल-फूल सकें। यह लेख एक टिकाऊ स्कूली संस्कृति में योगदान देने वाली ऐसी आवश्यक स्कूली प्रथाओं की पड़ताल करता है जो सीखने को सम्भव बनाने वाले वातावरण, सीखने की भयमुक्त व बाल-केन्द्रित प्रक्रियाओं, स्कूल-समुदाय के बीच मज़बूत रिश्तों और उच्च शिक्षा के लिए विद्यार्थियों को सहयोग देने पर केन्द्रित होती हैं। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के चाइल्ड फ्रेंडली स्कूल इनीशियेटिव के अन्तर्गत स्कूलों में रचनात्मक प्रथाएँ विकसित करने के प्रयास किए गए थे।

तालिका- 1 : चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव के पाँच क्षेत्र।

क्रमांक	स्कूली प्रथाओं के क्षेत्र	उद्देश्य	विकास के सूचक
	सुरक्षित स्कूली वातावरण	बच्चों को स्कूल में दाख़िला लेने के लिए आकर्षित करना	पर्याप्त हवा और रोशनी वाली कक्षाएँ, एक सुचारू रूप से चालू लाइब्रेरी, खेलने की जगह, विद्यार्थियों की कैबिनेट, हरियाली, सार्थक स्कूली सभा, उपयोग योग्य व चालू शौचालय, स्कूल तक सुरक्षित रूप से पहुँचने वाली रोड इत्यादि।
	कक्षा का वातावरण	बच्चों को स्कूल में बनाए रखना और उनकी नियमित उपस्थिति को सुनिश्चित करना	विद्यार्थियों को सीखने के संसाधनों तक निशुल्क पहुँच प्रदान करना; उपयुक्त शैक्षिक प्रदर्शनों (educational displays) का उपयोग करना, बच्चों के कार्यों का प्रदर्शन, छोटी कक्षाओं में लर्निंग पंडाल[i] लगाना, बच्चों के लिए रनिंग ब्लैकबोर्ड, कक्षा में किसी भी तरह का शारीरिक दण्ड न देना आदि।
	सीखने–सिखाने की प्रक्रिया	विद्यार्थियों के सीखने को सुदृढ़ करना और उनके नैदानिक मूल्यांकनों (diagnostic assessments) के आधार पर सीखने की उनकी विविध ज़रूरतों को पूरा करना	सहपाठियों के साथ मिलकर सीखने, लाइब्रेरी और प्रयोगशाला के उपयोग को प्रोत्साहित करना; गतिविधि-आधारित, प्रोजेक्ट-आधारित और हाथ से करके सीखना; ठोस वस्तुओं और विद्यार्थियों के अनुभवों का उपयोग करते हुए पाठों को वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से जोड़ना आदि।

	शिक्षक का विकास	विद्यार्थियों को उनकी सीखने की ज़रूरतों के मुताबिक़ सीखने में शामिल करना और विभिन्न तरह की शिक्षण-विधियों को अपनाना	शिक्षक निरन्तर पाठ योजनाएँ और सीखने के संसाधनों को तैयार करते रहते हैं, क्लस्टर-शेयरिंग बैठकों में शामिल होते हैं और चर्चा में योगदान देते हैं; एसएसए द्वारा संचालित वार्षिक कार्यशालाओं में शामिल होते हैं; मास्टर रिसोर्स पर्सन के रूप में काम करते हैं और आवश्यकता के मुताबिक़ स्कूल-स्तर/क्लस्टर-स्तर पर क्षमता निर्माण का काम करते हैं; अन्य शिक्षकों के साथ कक्षा की चुनौतियों की चर्चा करते हैं आदि ।
	समुदाय व माता-पिता की भागीदारी	स्कूली संस्कृति को बनाए रखना और प्रथाओं को विकसित करना	नियमित अभिभावक-शिक्षक बैठक आयोजित करना, सुनिश्चित करना कि स्कूल विकास एवं निगरानी समिति (एसडीएमसी) में सभी सामाजिक समूहों के अभिभावक शामिल हों और 33% महिलाएँ हों; समुदाय, पंचायत व पूर्व विद्यार्थियों के लिए ऐसे मंच तैयार करना कि वे विशेष कार्यक्रमों जैसे कि अधिगम प्रदर्शनियों, स्कूल के वार्षिक दिवसों, नामांकन अभियानों और स्कूल विकास योजना व उसके क्रियान्वयन आदि में योगदान कर सकें व ज़िम्मेदारियाँ ले सकें ।

चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव यानी बच्चों के लिए मैत्रीपूर्ण स्कूल की पहल

अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन का चाइल्ड-फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव 2005 से 2012 के बीच सुरपुर (कर्नाटक के यादगीर ज़िले का एक उपखण्ड) में लागू किया गया था। इस प्रयास का ध्यान मुख्य रूप से पाँच क्षेत्रों में स्कूली प्रथाओं को विकसित करने पर था : स्कूल का वातावरण, कक्षा का वातावरण, सीखने–सिखाने की प्रक्रिया, शिक्षकों का पेशेवर विकास और समुदाय की भागीदारी। शुरुआत में, इन क्षेत्रों में फैले विकास के 214 सूचकों का उपयोग किया गया था जिसे बाद में संशोधित करके 60 सूचक कर दिया गया, जिन्हें इस लेख के अन्त में दिया गया है।

छह से सात सालों तक चले इन प्रयासों के नतीजे में सुरपुर के स्कूलों में महत्त्वपूर्ण सकारात्मक बदलाव देखे गए जैसे नामांकनों में वृद्धि, बच्चों के स्कूल छोड़ने की दरों में कमी, विद्यार्थियों की स्कूल में बेहतर उपस्थिति और बेहतर अधिगम, और स्कूली स्तर के बाद भी शिक्षा को ज़ारी रखना। कई विद्यार्थियों ने जवाहर नवोदय विद्यालय और मोरारजी देसाई आवासीय स्कूल जैसे संस्थानों की प्रवेश परीक्षाओं को सफलतापूर्वक पास करके बड़ी संख्या में उनमें दाख़िले लिए।

हालाँकि चाइल्ड-फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव 2012-13 में समाप्त हो गया, लेकिन स्कूलों द्वारा ऊपर उल्लिखित पाँच क्षेत्रों में विकसित की गई प्रथाएँ आज 10 साल से ज़्यादा गुज़र जाने के बाद भी स्कूली संस्कृति का अभिन्न हिस्सा बनी हुई हैं। यह लेख विभिन्न स्कूलों में विकसित की गईं और बनाकर रखी गईं कुछ प्रथाओं और उनके दीर्घकालिक प्रभावों की पड़ताल करता है।

सीखने के सम्भव बनाने वाला वातावरण विद्यार्थियों की अकादमिक सफलता और व्यक्तिगत विकास के लिए एक बुनियादी ज़रूरत है। यह वातावरण अपने सही अर्थ में भौतिक स्थान से कहीं ज़्यादा कुछ होता है और यह विद्यार्थियों को एक भयमुक्त, सहभागी और आवश्यकताओं पर आधारित जुड़ाव के साथ सीखने का मौक़ा देता है। स्कूलों को ऐसे सहायक वातावरण को बढ़ावा देना चाहिए जहाँ विद्यार्थी यह महसूस कर सकें कि वे महत्त्वपूर्ण हैं। स्कूलों को बच्चों को सीखने की ऐसी वस्तुओं और अनुभवों की एक समृद्ध शृंखला मुहैया कराना चाहिए जो सीखने की विविध ज़रूरतों और रुचियों को पूरा कर सकें और जिज्ञासा व तार्किक चिन्तन को प्रोत्साहित कर सकें।

स्कूल में सीखने को सम्भव बनाने वाला वातावरण

केस स्टडी : प्रवास की समस्या का निदान

जुमालापुरा डोड्डा टांडा दूरदराज इलाक़े में स्थित एक गाँव है जो इसके लोगों के काम के सिलसिले में अन्यत्र प्रवास कर जाने के लिए जाना जाता है। बच्चे अपने माता-पिता के साथ पुणे, गोवा और बेंगलूरु प्रवास कर जाते थे, जिसकी वजह से स्कूल में उनकी उपस्थिति अनियमित रहती थी और आख़िरकार वे स्कूल छोड़ देते थे। वहाँ के स्कूल के प्रधान शिक्षक, अचप्पा गौड़ा और उनकी टीम ने रात के खाने और सुबह के नाश्ते के साथ स्कूल में विद्यार्थियों के रुकने के इन्तज़ाम कर दिए थे। बच्चों को स्कूल के मध्याह्न भोजन तथा अभिभावकों व शिक्षकों द्वारा किए गए व्यक्तिगत निवेश से सहारा मिल जाता था। शिक्षक बच्चों की देखभाल करने के लिए उनके साथ स्कूल में रहते थे।

इस पहल ने बच्चों की नियमित उपस्थिति को सुनिश्चित किया, जिसकी वजह से उनके सीखने के परिणामों में सुधार हुआ और पाँचवीं कक्षा के 50 फ़ीसदी बच्चों ने मोरारजी देसाई स्कूल में दाख़िले के लिए होने वाली प्रवेश परीक्षाओं को पास कर लिया और 12वीं कक्षा तक अपनी शिक्षा जारी रखी। इन सकारात्मक नतीजों ने अभिभावकों को शिक्षा के महत्त्व के प्रति आश्वस्त कर दिया। इसी का परिणाम है कि वर्तमान में नामांकन की संख्या लगभग 590 विद्यार्थियों तक पहुँच गई है, जिनमें से लगभग 470 विद्यार्थी नियमित रूप से स्कूल आते हैं हालाँकि वर्तमान में स्कूल में खाने और रहने की कोई सुविधा नहीं है।

केस स्टडी : भाषा के अवरोध को पार करना

गद्दादा नारायण टांडा एक बहुत छोटा-सा गाँव है, जहाँ प्रवास की दर बहुत ज़्यादा है। इस गाँव में भाषा का अवरोध सामने आता था क्योंकि बच्चों की घरेलू भाषा लम्बानी है लेकिन स्कूल में शिक्षा का माध्यम कन्नड़ा है। एक समर्पित शिक्षिका, काशीबाई, ने अभिभावकों के घर जाकर और यहाँ तक कि कई बार तो उनके खेतों में जाकर उन्हें अपने बच्चों को नियमित रूप से स्कूल भेजने के लिए राज़ी किया। उन्होंने विद्यार्थियों की भाषा सीखकर और बड़े बच्चों से छोटे बच्चों को मदद दिलवाकर भाषा के अवरोध को पार किया।

स्कूल ने ख़ुद से सीखने और साथियों से सीखने की संस्कृति को विकसित किया, जिसने विद्यार्थियों को शिक्षक की अनुपस्थिति में ख़ुद ही कक्षाओं को सम्हालने के क़ाबिल बना दिया। समूह कार्य और साथियों के साथ मिलकर सीखने की क्रियाविधियों ने बच्चों के सामाजिक कौशलों को बढ़ाया और सहयोग के माध्यम से उनकी समझ को गहरा किया। उन्होंने साथियों के सहयोग से समूहों में सीखना शुरू किया।

स्कूल बन्द होने के बाद खेल मैदान पर होमवर्क पूरा करना, ठोस वस्तुओं और गतिविधि-आधारित अधिगम का प्रयोग करना, वित्तीय साक्षरता के लिए विद्यार्थियों द्वारा प्रबन्धित बैंक चलाना, लाइब्रेरी व लर्निंग कॉर्नर तक पहुँच और उनका उपयोग; कक्षाओं में कला के विभिन्न रूपों, चित्रकारी और ओरीगामी के प्रदर्शनों जैसी सभी चीज़ों ने सीखने के परिणामों को हासिल करने और एक दशक बाद भी इस संस्कृति को बनाए रखने में मदद की है। भाग्यश्री, जो कि काशीबाई के स्थान पर आई हैं, ने सुनिश्चित किया है कि पहले शुरू हुई सभी प्रथाएँ यथावत जारी रहें, ख़ासतौर पर सामुदायिक सम्बन्ध से जुड़ी प्रथाएँ।

इन प्रथाओं ने सभी चरणों पर सीखने के परिणामों को हासिल करने में विद्यार्थियों की मदद की, और पाँचवीं कक्षा के तक़रीबन 80-85 प्रतिशत विद्यार्थी हर साल जवाहर नवोदय विद्यालय और मोरारजी देसाई स्कूलों की प्रवेश परीक्षाएँ पास कर जाते हैं। इन प्रथाओं की कल्पना करने, सहयोग के साथ इन्हें नियमित बनाने, सभी हितधारकों के बीच एक साझा समझ विकसित करने; विद्यार्थियों के सीखने के अर्थ में इन प्रथाओं के परिणामों को दर्शा पाने, और स्कूली पढ़ाई के बाद भी शिक्षा को जारी रखने को प्रोत्साहित करने जैसी बातों ने इन प्रथाओं का सांस्कृतिकरण करके एक दशक के बाद भी इनके जारी रहने को सम्भव बनाया। इस स्कूल के सभी पूर्व विद्यार्थियों ने बारहवीं कक्षा तक की पढ़ाई पूरी की और उनमें से ज़्यादातर विश्वविद्यालयों में पढ़ रहे हैं।

सीखने–सिखाने की भयमुक्त/न डराने वाली प्रक्रिया

विद्यार्थियों के लिए सुरक्षित महसूस करने और ख़ुद को अभिव्यक्त करने में आत्मविश्वास महसूस करने के लिए एक भयमुक्त, न डराने वाला वातावरण बनाना अत्यावश्यक है। इसमें एक ऐसी कक्षा संस्कृति का निर्माण करना शामिल है जहाँ ग़लतियों को सीखने के अवसरों के रूप में देखा जाता हो और सभी विद्यार्थी यह महसूस करते हों कि उन्हें सहयोग दिया जा रहा है। एक बाल-केन्द्रित शिक्षण-विधि बच्चों की व्यक्तिगत ज़रूरतों, रुचियों और क्षमताओं के मुताबिक़ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को यह समझते हुए गढ़ती है कि हर बच्चा अपने आप में अनोखा होता है और दूसरे से अलग ढंग से सीखता है। विद्यार्थियों को सवाल करने, जाँच-पड़ताल करने और हाथ से की जाने वाली गतिविधियों में संलग्न होने के लिए प्रेरित करने से उनकी जिज्ञासा प्रस्फुटित होती है।

गद्दादा नारायण टांडा स्कूल, जिसका कि वर्णन ऊपर किया गया है, में न डराने वाले वातावरण और एक बाल-केन्द्रित शिक्षण-विधि की अधिकांश विशेषताएँ हैं। यह स्कूल भाषा और सीखने से जुड़ी मुश्किलों के प्रति संवेदनशीलता रखने; हर बच्चे का उसकी अनूठी क्षमताओं के लिए सम्मान करने; बच्चों को उनके विचारों को अभिव्यक्त करने तथा सवाल पूछने की स्वतंत्रता देने; और मार्गदर्शन प्राप्त परियोजनाओं के माध्यम से चीज़ों की जाँच-पड़ताल करने वाली प्रथाओं का सांस्कृतिकरण करने में सफल रहा। ऐसे अन्य स्कूल हैं जिन्होंने ऐसी कई प्रथाएँ विकसित की हैं, जो बच्चों के लिए मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाने और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में बाल-केन्द्रित तरीक़ा अपनाने की तरफ़ ले जाती हैं।

केस स्टडी **:** *विद्यार्थी नेतृत्व*

लोअर प्राइमरी स्कूल, हुविनाहल्ली में एक शिक्षिका, नवनी, ने स्कूल कैबिनेट के निर्माण के माध्यम से विद्यार्थी नेतृत्व और ज़िम्मेदारी को बढ़ाने की एक नवाचारी पहल की। विद्यार्थी महत्त्वपूर्ण मंत्रालयों के लिए चुने गए जैसे प्रधानमंत्री, शिक्षा

मंत्री, स्वास्थ्य मंत्री, पर्यावरण मंत्री, और खेल व संस्कृति मंत्री, जो कि सरकारी तंत्र के लघु रूप को दर्शाता है। प्रधानमंत्री पूरे समन्वयन का निरीक्षण करता है; शिक्षा मंत्री अकादमिक प्रक्रियाओं और नियमित कक्षाओं पर ध्यान केन्द्रित करता है और लाइब्रेरी में मदद करता है, शिक्षकों की अनुपस्थिति में कक्षाओं को सम्हालता है और विद्यार्थियों को होमवर्क में मदद करता है; स्वास्थ्य मंत्री स्कूल परिसर में, मध्याह्न भोजन के दौरान सफ़ाई और स्वच्छता बनाए रखने के लिए ज़िम्मेदार होता है, साथ ही विद्यार्थियों के बीच स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता का प्रसार करने के लिए भी ज़िम्मेदार होता है; पर्यावरण मंत्री बागवानी को विकसित करने, छुट्टियों के दौरान हरियाली को बनाए रखने और पर्यावरण शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए ज़िम्मेदार होता है; खेल एवं संस्कृति मंत्री खेल कार्यक्रमों, सांस्कृतिक गतिविधियों और विभिन्न पाठ्येत्तर गतिविधियों में प्रतिभा को आगे बढ़ाने के लिए ज़िम्मेदार होता है। हर मंत्री अपनी सम्बन्धित गतिविधियों को विद्यार्थियों के एक समूह के साथ काम करते हुए पूरा करता है। साप्ताहिक कैबिनेट बैठक और मासिक रिपोर्ट विद्यार्थियों की प्रस्तुति और अभिव्यक्तिकरण के कौशलों और आत्मविश्वास को विकसित करती हैं। स्कूल ने इन पहलों के माध्यम से अपने परिसर में हरियाली बनाकर रखी है, सीखने की सामग्री विकसित की है और स्वास्थ्य जागरूकता को बढ़ावा दिया है, और यह सब नियमित गतिविधियों और शिक्षक के समर्थन के द्वारा सम्भव होता है। इस कैबिनेट प्रथा को बनाए रखने के लिए हुविनाहल्ली स्कूल ने गतिविधियों का नियमितिकरण कर दिया है और इन्हें स्कूल की दिनचर्या का हिस्सा बना दिया है। हर एक मंत्री की एक भली-भाँति परिभाषित भूमिका है और विशिष्ट ज़िम्मेदारियाँ हैं, जिनकी शिक्षकों द्वारा निगरानी की जाती है और वे विद्यार्थियों की मदद भी करते हैं। काम की प्रगति, भविष्य की गतिविधियों की योजना बनाने और सामने आने वाली समस्याओं का निदान करने के लिए नियमित बैठक आयोजित की जाती हैं। इस प्रक्रिया को पिछले 10 सालों से निभाया जाता रहा है।

शिक्षण योजनाएँ और अकादमिक बैठक

शासकीय मॉडल प्राइमरी स्कूल, हुनासागी कैम्प में दो महत्त्वपूर्ण पहलों ने शैक्षिक अनुभव को बहुत ही सार्थक ढंग से बदल दिया है: विद्यार्थियों की ज़रूरतों के मुताबिक़ कक्षा में उनकी संलग्नता के लिए शिक्षकों द्वारा योजना बनाना और नियमित अकादमिक बैठक आयोजित करना। प्रधान शिक्षक, बासवनागौड़ा द्वारा शुरू की गई इन प्रथाओं ने सीखने व सिखाने की गुणवत्ता में उल्लेखनीय सुधार किया है, जिससे विद्यार्थियों के नामांकन में इज़ाफ़ा हुआ है और कुल मिलाकर स्कूल का विकास बेहतर हुआ है।

इस बदलाव की आधारशिलाओं में से एक है कक्षा में विद्यार्थियों की संलग्नता के लिए शिक्षक का योजना बनाने का सुव्यवस्थित तरीक़ा। सभी शिक्षक विस्तृत पाठ योजनाएँ तैयार करते हैं और प्रधान शिक्षक से नियमित रूप से उनकी समीक्षा करवाते हैं। ये योजनाएँ उनके विद्यार्थियों की विशिष्ट ज़रूरतों को पूरा करने के लिए तैयार की जाती हैं और यह

***चित्र-1**: बच्चों के लिए मैत्रीपूर्ण स्कूली वातावरण सभी बच्चों के सीखने और उनके सर्वांगीण विकास को बढ़ावा देता है।*

सुनिश्चित करती हैं कि हर एक पाठ प्रासंगिक, बच्चों को संलग्न रखने वाला और पाठ्यचर्या से मेल खाने वाला हो। इन योजनाओं को इनके क्रियान्वयन पर की जाने वाली समीक्षा व विचार-विमर्श के आधार पर संशोधित किया जाता है।

पाठों के इस वैयक्तिकृत नियोजन को सहारा देने के लिए स्कूल प्रधान शिक्षक के नेतृत्व में पाक्षिक अकादमिक बैठक आयोजित करता है। ये बैठक शिक्षकों को सर्वश्रेष्ठ प्रथाओं, नवाचारी शिक्षण-विधियों और सीखने की सामग्री के प्रभावी उपयोग को साझा करने के लिए एक मंच प्रदान करती हैं।

यह सहयोगपूर्ण वातावरण पेशेवर विकास और शिक्षण कार्यनीतियों की निरन्तर बेहतरी को बढ़ावा देता है। शिक्षक उनके सामने आने वाली विभिन्न मुश्किलों की आपस में चर्चा करते हैं, चाहे ये मुश्किलें अवधारणाओं से जुड़ी हों, विद्यार्थियों के जुड़ाव से सम्बन्धित हों या फिर कक्षा के प्रबन्धन से। ये बैठक विद्यार्थियों से सम्बन्धित मुद्दों जैसे उनके अनुपस्थित रहने, स्कूल छोड़ देने और अकादमिक प्रदर्शनों पर भी ध्यान केन्द्रित करती हैं। इससे स्कूल को अकादमिक व अन्य मुद्दों को सुलझाने के लिए लक्ष्य-आधारित प्रयास करने का अवसर मिलता है।

निष्कर्ष

एक टिकाऊ स्कूली संस्कृति का निर्माण करने के लिए ऐसे बहुरूपी तरीक़े की ज़रूरत होती है जो भौतिक वातावरण, संसाधन उपलब्धता, भावनात्मक सुरक्षा, वैयक्तिकृत अधिगम, शिक्षक के विकास और सामुदायिक जुड़ाव जैसे मुद्दों पर ध्यान देता हो। इन प्रथाओं को अपनाकर स्कूल ऐसे समृद्ध व सहयोगात्मक वातावरण का निर्माण कर सकते हैं जो विद्यार्थियों को उनकी पूरी क्षमता पर हासिल करने में सक्षम बनाएँ। यहाँ चर्चा में शामिल किए गए उदाहरणों में प्रधान शिक्षकों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है, शिक्षकों ने एक टीम की तरह काम किया है और स्कूल-समुदाय सम्बन्ध को सोच-समझकर निर्मित किया गया है। इन सभी स्कूलों में कुछ ख़ास प्रथाओं की कल्पना सन्दर्भ में रखकर की जाती है, सभी हितधारकों के बीच एक साझा समझ बनाई जाती है, प्रक्रियाओं को तय किया जाता है, क्रियान्वयन और समीक्षा से जुड़ी कार्यविधियों को तय किया जाता है और अन्त में समुदाय, शिक्षक व विद्यार्थी इन प्रथाओं के परिणामों के मूल्य को समझते हैं और यह समझ उन्हें इन प्रथाओं को जारी रखने के लिए प्रेरित करती है।

चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव कार्यक्रम में उपयोग किए जाने वाले विकास सूचकों की सम्पूर्ण सूची।

चाइल्ड फ्रेन्डली स्कूल इनीशियेटिव शोरापुर

स्कूल सुधार योजना बेसलाइन सितम्बर–नवम्बर, 2009

क्लस्टर का नाम :

स्कूल का नाम :

क्रमांक	पाक्षिक सूचक
F1	एसडीएमसी और समुदाय मध्याह्न भोजन में दिए जाने वाले खाने की गुणवत्ता का निरीक्षण करते हैं
F2	कक्षाएँ साफ़ और स्वच्छ हैं
F3	बच्चों द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्य जैसे प्रोजेक्ट कार्यों, पेंटिंग और शिल्प-कार्यों को आकर्षक ढंग से प्रदर्शित किया जाता है और लिखित सामग्री को नोटिस बोर्ड या दीवारों पर प्रदर्शित किया जाता है
F4	रिसोर्स कॉर्नर – बच्चों को आसानी से उपलब्ध किताबें, टीएलएम, उपकरण मुहैया कराए जाते हैं
F5	कक्षा में कोई बेंत दिखाई नहीं देती
F6	स्कूल के सभी हिस्से साफ़ और स्वच्छ रखे जाते हैं (कोई जाले नहीं, काग़ज़ के टुकड़े नहीं, खिड़कियों के बाहर प्लास्टिक के कप नहीं, इधर-उधर फेंका गया कचरा नहीं इत्यादि)
F7	स्कूल परिसर में सामान्य बुनियादी ढंग की हरियाली – बग़ीचा, पेड़-पौधे
F8	सभी बच्चों के लिए पीने का साफ़ पानी उपलब्ध कराया जाता है
F9	लड़कों व लड़कियों के लिए अलग-अलग, चालू और उपयोग किए जा सकने वाले शौचालय (जिनमें पानी की सुविधा है, मग्गे हैं, बारिश से बचने के लिए कवर है, कुंडी वाला और उपयोग किया जा सकने वाला दरवाज़ा है)
F10	रिकार्डों को सफ़ाई से व्यवस्थित किया जाता है और पहचानी हुई जगह पर रखा जाता है

F11	खेल के सामान सफ़ाई से व्यवस्थित किए जाते हैं और पहचानी हुई जगह पर रखे जाते हैं
F12	एक साफ़ और स्वच्छ किचन/खाना बनाने की जगह है
F13	मध्याह्न भोजन के लिए लगने वाले किराने के सामान को रखने के लिए पर्याप्त और अलग जगह है (यह जगह पढ़ने-पढ़ाने वाले हिस्से की क़ीमत पर नहीं होनी चाहिए)
F14	प्रधान शिक्षक समेत सभी शिक्षक समय पर आते हैं (स्कूल शुरू होने से पहले किसी भी समय)
F15	प्रधान शिक्षक समेत सभी शिक्षक समय पर चले जाते हैं (स्कूल का समय पूरा होने के बाद कभी भी)
F16	खेल के पीरियड के दौरान बच्चे शिक्षक के मार्गदर्शन में खेलते हैं
F17	स्कूल में नामांकित विद्यार्थियों की कुल संख्या दर्ज़ हो और मार्गदर्शी (गाइड) द्वारा उनकी गिनती हो
F18	स्कूल के स्थायी शिक्षकों की संख्या और उपस्थित शिक्षकों की संख्या दर्ज़ होती है
F19	लाइब्रेरी है और उसे बच्चे निरन्तर इस्तेमाल करते हैं
F20	फर्स्ट-एड किट उपलब्ध है और उपयोग किए जाने लायक है
	मासिक
M1	एसडीएमसी बैठक ज़रूरी कोरम (सदस्यों की वह न्यूनतम संख्या जिसके होने पर ही बैठक में निर्णय लिए जा सकें) के साथ नियमित रूप से आयोजित की जाती रही हैं
M2	एसडीएमसी बैठक के मिनट स्कूल से जुड़ी चर्चाओं (बच्चों का नामांकन, स्कूल में बने रहना, सीखना, स्कूल छोड़ देने वाले बच्चों के लिए रणनीतियाँ आदि) को दर्शाते हैं
M3	कक्षाओं में एक आकर्षक लर्निंग पंडाल है
M4	साप्ताहिक शिक्षक बैठकों की कार्यवाहियों को दर्ज़ किया जाता है और उन पर आगे कार्रवाई की जाती है
M5	प्रत्येक शिक्षक के पास हर विषय/इकाई के लिए एक स्पष्ट/अच्छी तरह तैयार पाठ योजना होती है
M6	प्रत्येक शिक्षक दिन की गतिविधियों/कार्यवाहियों के बारे में ज़रूरी बातें लिखने के लिए एक डायरी बनाते हैं
	त्रैमासिक
Q1	समुदाय ने कक्षा में योगदान किए हैं, जैसे कि शिक्षण/टीएलएम बनाने में या अन्य तरह से
Q2	स्कूल के अकादमिक और प्रबन्धन से जुड़े मुद्दों की चर्चा ग्राम पंचायत के सदस्यों के साथ नियमित अन्तराल पर की जाती है और इन चर्चाओं के रिकार्ड रखे जाते हैं
Q3	विद्यार्थियों के लिए हर एक कक्षा में सवाल पेटी उपलब्ध है
Q4	उच्च कक्षाओं के लिए साधनयुक्त प्रयोगशाला है
Q5	विशेष ज़रूरतों वाले बच्चों की पहचान की गई है और इनकी सूची स्कूल में उपलब्ध है
Q6	विद्यार्थियों की कैबिनेट मौजूद है और सक्रिय है
Q7	स्कूल सुधार योजना (एसआईपी) में हुई प्रगति को दर्ज़ किया जाता है
Q8	तीन महीनों में किसी भी बच्चे ने स्कूल नहीं छोड़ा है

	वार्षिक
A1	एसडीएमसी सरकारी मानकों के मुताबिक़ गठित की गई है (महत्त्वपूर्ण सूचक : 9 निर्वाचित सदस्य, सब-के-सब अभिभावक)
A2	समुदाय ने पिछले साल के दौरान दान दिया है (आर्थिक/सामग्री/श्रम)
A3	अभिभावक मीटिंग मानकों के मुताबिक़ आयोजित की जाती हैं (साल में दो बार)
A4	कक्षा के भीतर बच्चों को धूप और बारिश से पर्याप्त सुरक्षा मिलती है (इसमें उचित छत, दरवाज़े, खिड़कियाँ आदि हैं)

A5	कक्षाओं के भीतर पर्याप्त रोशनी और उचित वायुसंचार है
A6	कक्षाओं में खुलकर बैठने और चलने-फिरने की पर्याप्त जगह है
A7	कक्षाओं में उचित और स्पष्ट ब्लैकबोर्ड है, जो बच्चों व शिक्षकों दोनों को दिखाई देता है
A8	पहली और दूसरी कक्षाओं के सभी बच्चों के लिए सुलभ रनिंग ब्लैकबोर्ड हैं
A9	कक्षाओं में सभी विषयों से जुड़े अलग-अलग दीवार लेखन और प्रदर्शन हैं
A10	स्कूल के चारों तरफ़ अहाता है जिसमें एक गेट है (यह अहाता एक बायो-फेंस या जैविक-बाड़ भी हो सकता है, लेकिन इसमें कोई अन्तराल नहीं होने चाहिए)
A11	दीवारों पर पुताई है और उनका अच्छी तरह रखरखाव किया जाता है
A12	हर 40 बच्चों के लिए कम-से-कम एक कक्षा है
A13	बच्चों के खेलने के लिए पर्याप्त आकार का खेल का मैदान है
A14	सालाना खेल मेला आयोजित किया जाता है
A15	बच्चों की विशेष प्रतिभाओं को पहचाना और दर्ज़ किया जाता है
A16	सांस्कृतिक कार्यक्रम (क्विज़/नाटक/कहानी सुनाना आदि) नियमित (वार्षिक/त्रैमासिक) रूप से आयोजित होते हैं
A17	स्कूल में प्रधान शिक्षक, शिक्षकों और एसडीएमसी की भूमिकाओं व ज़िम्मेदारियों की सूची सहजता से उपलब्ध है
A18	स्कूल सुधार योजना बनाई गई है और उपलब्ध है
A19	प्रधान शिक्षक व सम्बन्धित शिक्षकों के पास सभी कक्षाओं व विषयों के लिए योग्यताओं की पूरी सूची उपलब्ध है
A20	सभी कक्षाओं के लिए टाइम टेबल बनाया जाता है वह प्रधान शिक्षक के पास आसानी से उपलब्ध है
A21	सभी बच्चों को किताबें व यूनिफ़ार्म समय पर बाँट दी जाती हैं
A22	वार्षिक स्कूल दिवस कार्यक्रम हो चुका है
A23	वार्षिक सामूहिक कार्यक्रम जैसे मीट्रिक मेला आयोजित हो चुका है
A24	स्कूल की उपलब्धियों से जुड़े सभी रिकार्ड (KSQAO* और ऐसे ही अन्य) प्रमुखता से प्रदर्शित किए जाते हैं
A25	सभी शिक्षक पिछले साल अपनी नियत एसएसए ट्रेनिंग में शामिल हुए हैं
A26	शिक्षकों ने पिछले साल शोध/क्रियात्मक शोध कार्य किया है

**कर्नाटक स्कूल गुणवत्ता मूल्यांकन संगठन*

टिप्पणी :

[i] लर्निंग पंडाल में बच्चों के कामों को कक्षा के छप्पर से लटकाकर दिखाया जाता है, जैसा कि नली-कली कक्षा में होता है।

रुद्रेश एस. पिछले 20 सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन के साथ हैं और वर्तमान में कर्नाटक व पुडुचेरी राज्यों में फ़ाउंडेशन के कार्यों के प्रमुख हैं। शिक्षा के क्षेत्र में 15 सालों से काम करते हुए वह प्रारम्भिक भाषा एवं गणित शिक्षा सम्बन्धी विभिन्न प्रयासों तथा कर्नाटक सरकार के शिक्षा विभाग की शिक्षकों के पेशेवर विकास सम्बन्धी पहलों से जुड़े रहे हैं। उनसे rudresh@azimpremjifoundation.org पर सम्पर्क किया जा सकता है।

अनुवाद : भरत त्रिपाठी **पुनरीक्षण :** प्रतिका गुप्ता **कॉपी एडिटर :** शहनाज़

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व के पुराने अँग्रेज़ी अंक
https://azimpremjiuniversity.edu.in/learning-curve से डाउनलोड किए जा सकते हैं।

पत्रिका के हिन्दी और कन्नड़ा अंक या उनके लेख
https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/ पर उपलब्ध हैं।

अज़ीम प्रेमजी यूनिवर्सिटी लर्निंग कर्व पत्रिका की प्रति सब्सक्राइब/प्राप्त करने के लिए आगे दी गई लिंक पर दिए गए फार्म को भरकर भेजें :
https://bit.ly/3SS3kNG

अपने सुझाव, टिप्पणियाँ,मत और अनुभव हमें इस ईमेल पते पर भेज सकते हैं :
learningcurve@apu.edu.in

Printed and Published by Sharad Sure, Registrar, on behalf of Azim Premji University, Survey No. 66, Burugunte Village, Bikkanahalli Main Road, Sarjapura, Bengaluru, Karnataka 562 125

Printed at Lakshmi Mudranalaya, #117, 5th Main Road, Chamrajpet, Bengaluru, Karnataka 560 018

घोषणा

स्कूली शिक्षा की पत्रिकाओं की पुनर्संरचना

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउंडेशन का हिस्सा है। और यह सरकारी स्कूलों की शिक्षा के प्रति घोषित प्रतिबद्धता के साथ भारत में सार्वजनिक शिक्षा व्यवस्था को सुदृढ़ करने में मदद करने वाले तरीक़ों की निरन्तर खोज करता रहता है। इसी प्रतिबद्धता के तहत हम स्कूली शिक्षकों, शिक्षा से जुड़े लोगों और अन्य हितधारकों के लिए पत्रिकाएँ प्रकाशित करते हैं। इन पत्रिकाओं में शिक्षाशास्त्र, शिक्षा की प्रक्रियाओं और विद्यार्थियों के कल्याण से जुड़ी अन्तर्दृष्टियाँ, मत और नज़रिए शामिल होते हैं। वर्तमान में, विश्वविद्यालय स्कूली शिक्षा पर चार पत्रिकाएँ प्रकाशित करता है – *एट राइट एंगल्स* (गणित पर), *आई वंडर...* (विज्ञान पर), *पाठशाला* (प्राथमिक स्कूली शिक्षा पर हिन्दी में प्रकाशित पत्रिका) और *लर्निंग कर्व* (प्राथमिक स्कूली शिक्षा पर अँग्रेज़ी, हिन्दी और कन्नड़ा में प्रकाशित पत्रिका)।

अगले अंक (दिसम्बर 2024) से *लर्निंग कर्व* सार्वजनिक शिक्षा के अन्य महत्त्वपूर्ण पहलुओं जैसे नीति, उनका प्रभाव और क्रियान्वयन, पाठ्यचर्या, वित्तपोषण और शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले नए विकास पर ध्यान केन्द्रित करेगी। अपने नए अवतार में *लर्निंग कर्व* इन क्षेत्रों से जुड़े विभिन्न परिप्रेक्ष्यों, नए और जानकारी भरे नज़रियों तथा विचारोत्तेजक दृष्टिकोणों के लिए एक मंच के रूप में काम करेगी।

पाठशाला प्राथमिक स्कूली शिक्षा पर विश्वविद्यालय की एकमात्र पत्रिका होगी और यह देश भर के पाठकों के लिए हिन्दी, अँग्रेज़ी व कन्नड़ा में प्रकाशित की जाएगी। इसमें *लर्निंग कर्व* का हिस्सा रहे कुछ विषय और सामग्री शामिल रहेगी।

हम आने वाले हफ़्तों में *लर्निंग कर्व* के पाठकों, सब्सक्राइबर्स और संरक्षकों को *पाठशाला* से परिचित कराने और जोड़ने का प्रयास करेंगे। साथ-ही-साथ *लर्निंग कर्व* के लिए पाठकों का एक समुदाय भी तैयार करेंगे।

हम आशा करते हैं कि आप हमारी सभी पत्रिकाओं के लिए अपना सहयोग जारी रखेंगे।

लर्निंग कर्व
बदल रहा है!
जानकारी अन्दर है।

Azim Premji University
Survey No. 66, Burugunte Village
Bikkanahalli Main Road, Sarjapura
Bengaluru 562125, Karnataka

www.azimpremjiuniversity.edu.in

Facebook: /azimpremjiuniversity
Instagram: @azimpremjiuniv
X: @azimpremjiuniv